सिद्धयोग

2017

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

एक प्रति : 20/- त्रिवार्षिक : 360/-

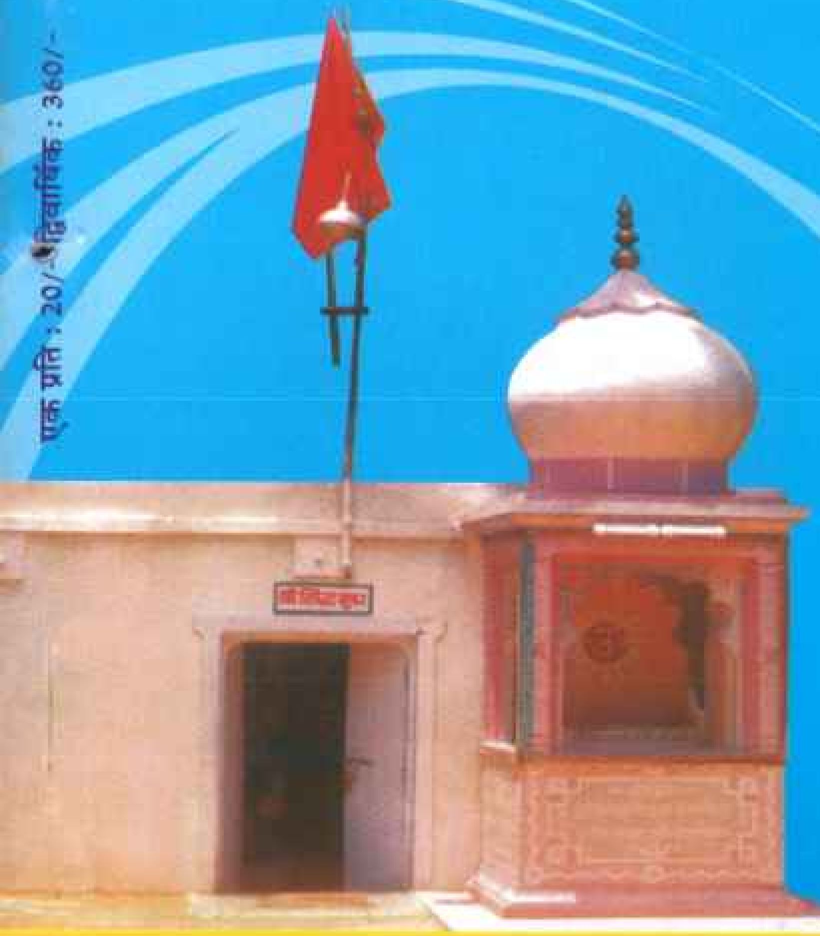

वर्ष : 50, अंक : 6
सितम्बर 2017
प्रकाशन तिथि : 01.09.2017

जन्मोत्सव
विशेषांक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

याद रखो

भगवान् ने कृपा करके हमें जो मानव शरीर प्रदान किया है, यह भगवान् के प्रेम को प्राप्त करने का शुभ अवसर है। यदि हमने यह अवसर खो दिया तो अपना सर्वस्व गवाँ दिया। अतएव बड़ी गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। एक-एक श्वांस जो जा रहा है, वह हमें मृत्यु के निकट ले जा रहा है ; शरीर के नाश का उपक्रम हो रहा है। जैसे-जैसे समय बीत रहा है, हम सोचते हैं - हम बड़े हो रहे हैं पर समय बीतने के साथ हम बड़े नहीं हो रहे हैं, हम छोटे हो रहे हैं ; हमारी आयु बढ़ नहीं रही है, घट रही है। कब मृत्यु हो जाय, कुछ पता नहीं। अतएव मृत्यु के आने से पहले - पहले हमारा यह धर्म है, परम कर्तव्य है कि इस जगत् के समस्त झंझटों से अपने को मुक्त करके भगवान् में लग जायँ, मन को भगवान् में लगा दें। जहाँ मन भगवान् में फँसा कि जगत् से हटा। भगवान् में आसक्ति हुई कि जगत् से विरक्ति अपने-आप हो जायेगी। जहाँ प्रकाश आया कि अन्धकार मिटा- यह नियम है।

भगवान् में लगने का प्रयत्न हमें स्वयं करना होगा; दूसरा कोई हमारे लिये यह करेगा नहीं, कर सकता नहीं। यह अपने करने से होगा, अपनी इच्छा से होगा और होगा अवश्य, यदि हम करना चाहेंगे। निश्चित-निश्चित सिद्धान्त यह है कि भोग मिलने सहज नहीं हैं, पर भगवान् मिलने सहज हैं, यदि हम उन्हें प्राप्त करना चाहें। भक्त की चाह भगवान् में प्रतिफलित हो जाती है। शास्त्र की घोषणा है, भगवान् की घोषणा है - 'जो मेरा हो गया है, मैं उसका हो जाता हूँ। '

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष : 50
अंक : 6

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

सितम्बर
2017

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च।।
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्टे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने।।
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे।।

देवाधिदेव, पुराण पुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्म को नमस्कार है। सृष्टि करने वाले तथा सभी अर्थो के ज्ञाता स्वयंभू! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा, परमात्मा को नमस्कार है। विश्व के उत्पत्ति स्थान, देवों के हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णु को नमस्कार है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 5
3. मानव जीवन में योग की आवश्यकता– आचार्य डॉ. दासलाल जी 10
4. श्रीमद्भागवत् में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह 12
5. श्री मत्स्येन्द्रनाथ की योग–दीक्षा – श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र 16
6. योगनिष्ठ योगी की पहचान– राजकुमारी त्रिखा 21
7. ध्यान और उसकी महत्ता 24
8. राष्ट्रदेवता की आराधना– ब्रह्मलीन स्वामी श्री अखण्डानन्दजी सरस्वती 28
9. अन्त मति सो गति– सूरज शर्मा 33
10. योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज– श्री सेवतीलाल शर्मा 35
11. गुरु चरणों में लग जाये मन– विजय शर्मा 37
12. कुराने में प्रथम योग–प्रचार कार्यक्रम– अशोक शर्मा 38

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

सार्वभौम विद्या योग और अधिकार भेद

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

''योग'' अध्यात्म विद्या है। मानव मात्र इसका अधिकारी है। यह दूसरी बात है कि कोई व्यक्ति योग की परिभाषा न समझ कर इसको अपने मन में साम्प्रदायिकता का स्थान देता रहे। साम्प्रदायिक लोग ''मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्ना'' के नियमानुसार अपने मनोनीत नियमों के आधार पर अपने सम्प्रदाय को चलाते हैं। हमारी यह योग विद्या, जिसका उपदेश भगवान सदाशिव के सत्संकल्प से आनन्दकंद श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने हम सबको किया, इस प्रकार की विद्या है जिसमें ज्ञान–विज्ञान के स्वरूप को समझाकर मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाया जाता है।

भगवान पतंजलि देव ने 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:' कह करके योग–दर्शन में योग की परिभाषा बतलायी। चित्तवृत्ति का निरोध अर्थात् चित्त की समस्त वृत्तियों का नितरांरोध अर्थात् सीमा तक पहुँची हुई समस्त चित्तवृत्तियों का बिल्कुल–बिल्कुल रुक जाना। चित्तवृत्तियाँ त्रिगुणात्मक होती हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण–ये तीनों प्रकृति से उत्पन्न–सम्भव गुण हैं। ये तीनों गुण ही मनुष्य को, साधक को और योगी को मलिन रखा करते हैं। सतोगुण प्रधान चित्त आत्म स्वरूप अध्यात्म ऐश्वर्य में प्रेम करने वाला होता है। वहाँ इसके विपरीत रजोगुण और तमोगुण प्रधान चित्त अवैराग्य, अनैश्वर्य, अन्धकार एवं आलस्य का अनुगामी होकर प्रेम मार्ग की ओर चलता है।

योगी अपने चित्त की त्रिगुण–प्रवृत्तियों को हटाकर चित्तवृत्ति का निरोध करता है एवं अपने आपको क्रमश: समाधि का अभ्यास करते हुए कैवल्य की ओर ले जाता है। कैवल्य लाभ करना। निस्त्रैगुण्यता प्राप्त करना ही योगी का परम लक्ष्य है। यह लक्ष्य भूमण्डल पर जन्म लेने वाले मानव–मात्र का हो सकता है। इसका किसी मजहब या सम्प्रदाय से सम्बन्ध नहीं है। वस्तुत: साधक को मननशील होना चाहिए। उसका जन्म कहाँ हुआ है? वह किन मन्तव्यों को मानने वाला है? भले ही वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी या फारसी है, पुरुष है अथवा स्त्री है। प्रत्येक मननशील मानव योग का अधिकारी है। योग का सच्चा जिज्ञासु योगोपदेशक योग्य सच्चे सद्गुरु की शरण लेकर योग का अभ्यास कर सकता है। योग में प्रवेश कर लेने के बाद

श्रद्धापूर्वक नियमानुवर्तिता के साथ दृढ़तर अभ्यास में लगा हुआ साधक योग की पराकाष्ठा को पाकर ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो जाया करता है। अखिलात्मा योग–योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार बताया है–

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

युक्त योगी वह कहलाता है जो ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा होकर विकार रहित स्थिति को प्राप्त हो गया है। जिसकी दृष्टि में लोहा, सोना, मिट्टी, पत्थर समान रूप से दिखाई देते हों। किन्तु योग की यह स्थिति सद्गुरु के कंट्रोल में रहकर क्रमशः योग के दृढ़तर अभ्यास से प्राप्त होती है।

जो साधक अपनी साधना के द्वारा प्रकृति के सभी नियमों को समझकर उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है, वह ज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। और जो साधक अपने संयम को उत्कृष्ट बनाकर आत्म साक्षात्कार कर लेता है, एवं प्रातिभ, श्रवण, वेदना, आदर्श आदि–आदि सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है। वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है।

ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा होकर योगी कूटस्थ स्थिति को प्राप्त हो जाता है। उसकी बुद्धि आत्माकार बनी रहने लगती है। किसी भी विकार का उसके मन में उदय नहीं होता है। वह वासना–तृष्णा के जाल से परे हो जाता है। वह प्राणिमात्र को अपनी आत्मा समझता है एवं अपने आपको भी प्राणिमात्र के अन्दर आत्मवेग देता है, यही उसकी योग की पराकाष्ठा की स्थिति है। उसकी दृष्टि में वर्णभेद और जातिभेद समाप्त हो जाया करते हैं।

अतः योग विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिसको सार्वभौम विद्या कहा जा सकता है। पृथ्वी पर जन्मा प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने अधिकार भेद से इसका अधिकारी है। हमारे पूर्वज ऋषियों ने अधिकार भेद को अवश्य माना है। जिसका अर्थ है साधक की योग्यता–क्षमता। इसका सम्बन्ध जाति–वर्ण अथवा स्थान और मत अथवा मजहब से नहीं है। प्रत्युत साधक की योग्यता और क्षमता से है। जैसे पहली कक्षा का विद्यार्थी पहली की पढ़ाई पढ़कर उत्तीर्ण होकर दूसरी कक्षा में प्रवेश पा जाता है। हाँ वह शनैः शनैः कक्षाओं को उत्तीर्ण कर एम. ए. व आचार्य की डिग्री पा लेता है। अस्तु! योग–विद्या का अभ्यासी भी शनैः शनैः अभ्यास को बढ़ाता हुआ अपने परम लक्ष्य को पा जाया करता है। अधिकार भेद का ज्ञान सद्गुरु को होता है। वह जानते हैं कि शिष्य को किस मार्ग से चलाकर योगाभ्यास कराना है।

सम्पादकीय–

योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 108 वाँ पावन प्राकट्य दिवस

आचार्य (डा.) दासलाल जी महाराज

कभी–कभी धराधाम पर भगवान् से 'तद्भाव' युक्त महापुरुष अवतरण करते हैं तथा भगवान् के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधना के पथ पर लगाकर मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष हरियाणा प्रान्त में एक छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं जो युगों–युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गाँव अलुपुर में इनका प्रादुर्भाव हुआ। अपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दे दिया था और कहा था कि मेरी माँ को दिव्य रसायनों का सेवन कराना। अपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृत्तान्त जान लिया था। नेपाल में 'गण्डकी नदी पर स्थित 'त्रिवेणी– धाम'' में रहकर बहुत समय तक समाधि का अभ्यास करते हुए शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारण किया। शैशवावस्था से ही अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण चन्द्र का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार की बाल–लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आल्हादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्ददायिनी रूप को देखकर 'पिताश्री' ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा। ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरुष के रूप में विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये। पिताजी स्वयं अत्यन्त धार्मिक विचारों वाले तथा तपस्वी महापुरुष थे। इन्हें वे 4–5 वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप से बिठा देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी। तत्पश्चात् हरियाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे। अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब में लाहौर में आचार्य विश्व–बन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही विद्वान तथा तपस्वी धर्मात्मा महापुरुष थे। यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री

कृष्णचन्द्र जी इन्हें बार–बार आकर्षित करते रहे। अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगीं। विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते हुए आनन्दित होते रहे। भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरूढ़ होने का विचार बनाने लगे। किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'चिरंजीव! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अतः हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे। साधकों में अद्‌भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वतः होने लगीं। ध्यान की ऊँची–ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगी। गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्ठे करने में रुचि नहीं रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे। योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षों के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे। वस्तुतः अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं। जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया। उर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है। ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता। मन्द संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलतः श्रद्धा बन नहीं पाती। उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वतः ही खींच लेते हैं अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान में दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे–धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है। सद्‌गुरु चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाता है। उसे अब सब कुछ मिल गया। 'भुक्ति–मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नमः' गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी प्रदान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब 18–20 वर्ष के ही थे उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी अगढ़धत्ता के प्रसंग में आपने स्वयं ही इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव से एक बार कहा था–तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी हैं अतः तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् 1938 में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरुदेव जी श्री सिद्धगुफा सवांई धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये। स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया। साधकों को शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को अपने नेति धोति आदि षटकर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं का अद्‌भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरुदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारिक तरीके से आकर लेते। इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान् शिव की आज्ञा से वे गुरुदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरु भक्ति के फलस्वरूप वाक्‌सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियाँ प्रकाशित होने लगीं। इसी प्रकार से जम्मू कश्मीर का संसार सिंह दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधना रत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग–खिलमर्ग की तरफ गुरुदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था। एक बार वाराणसी के गुरुभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने लगे तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर 'जयगुरुदेव' कहने लगा। यह आश्चर्य में पड़ गये। इस नितान्त जंगल में यह कौन हो सकता है। उस साधु ने कहा–''मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ। उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ। वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गद्‌गद् कण्ठ से गुरुदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की। वहाँ पर निःशुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरुदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी निःशुल्क दिये व सिखाये जाते थे। आज भी वही परम्परा चल रही है। 'सन्तु सन्तु निरामयाः' की भावना को गुरुदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं उनमें कई बार इनकी अध्यक्षता रही है। 1986 में भी विश्व योग सम्मेलन में आप साधना–सत्र के अध्यक्ष थे। आप श्रोत्रीय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरूह सिद्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बताकर योग सिद्धान्तों को साधकों में कूट–कूट कर भर

देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढंग से समझाने के लिए आपने 'योग सिद्धान्त' नामक यौगिक पुस्तक के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। धन संग्रह का आपका कभी उद्देश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे—यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का 'तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।'

इस प्रकार से गुरुदेव निःस्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिए आप कल्पतरू हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है। 'प्रणमामि गुरुम् गुरु कल्पतरूम्' कल्प वृक्ष रूप गुरुदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दुःख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों के अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं इसलिए ही संसार में आप सर्ववन्द्य होते हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म–साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरुदेव के लाखों शिष्य/प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्जवल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

(स्त्रियों के विषय में आमतौर पर जनता में इस प्रकार का विचार है कि उनको किसी गुरु से दीक्षा प्राप्त नहीं करनी चाहिए। उसका पति ही उसका गुरु होता है। इसके अतिरिक्त और किसी से दीक्षा प्राप्त करना उपयुक्त नहीं है। लोगों की यह भावना केवल मात्र कपोल–कल्पित ही मालूम पड़ती है। हमारे प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के बहुत से उपाख्यान हैं जिसमें यह भली प्रकार से साबित हो जाता है कि स्त्रियों को अपने कल्याण के लिए यदि सामर्थ्यवान गुरुदेव मिल जाये तो आध्यात्म विकास हेतु दीक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। स्त्रियों के शरीर में और पुरुषों के शरीर में अन्तर ही क्या है? हाड़–माँस और चर्म आदि के द्वारा प्रकृति से एक पुतला निर्मित हुआ। लिंग भेद से हम उसे स्त्री कह दें या पुरुष कह दें। यह तो केवल मात्र मन की विडम्बना है। वस्तुतः स्त्री और पुरुष में कोई भेद नहीं। आत्मा न पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक। केवल मात्र एक अमर ज्योति के रूप में विशुद्ध प्रकाश है जो हर शरीर को अपना अधिष्ठान बना करके चमकता रहता है। लिंग भेद से जिन नामों द्वारा उसको अभिव्यक्त किया जाता है उन्हीं नामों से वह व्यावहारिक होता रहता है। यदि उसको स्त्री कहा जाता है तो उसके लिए स्त्री लिंग के शब्दों का प्रयोग होता है और पुरुष कहा जाता है तो पुल्लिंग वाचक शब्दों

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मानव जीवन में योग की आवश्यकता–
हर युग में हर व्यक्ति को पग–पग पर

प्रेषक–आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज

योग हमारे ऋषियों की अमूल्य निधि है जिसकी मानव को पग–पग पर आवश्यकता है। योग एक विज्ञान है तथा जीने की कला भी। Yog is a spiritual science as well as an art of living. योग के प्रयोग से ही मनुष्य जीवन में उन्नति के परम शिखर तक पहुँच सकता है।

योग आत्म–साक्षात्कार का या मुक्ति का एकमात्र साधन है। वेद, उपनिषद् पुराण जिस अमृत विद्या की महिमा गाते अघाते नहीं हैं वह योग विद्या ही है।

अध्यात्म में जहाँ योग की आवश्यकता अपरिहार्य है वहीं पर सामान्य जीवन में भी इसकी उपयोगिता बनी रहती है। मनुष्य के श्वास लेने से लेकर हर क्रिया में योग का ज्ञान आवश्यक है।

योग समुन्नत ढंग से जीने की शैली है। अपने मन को स्थिर रखने के लिए योग का विज्ञान जानना आवश्यक है। योग मनुष्य को समतावस्था में जीना सिखाता है। **'समत्वं योग उच्यते'** मन की समतावस्था को ही योग कहते हैं। बुद्धि का सन्तुलन योग से ही बनता है। योग में स्थित रहने वाला योगी सुख–दुःख, लाभ–हानि, सफलता–असफलता में अपने मन के सन्तुलन को खोता नहीं है। **''यस्मिन् स्थितौ न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते''** भारी से भारी कष्ट पड़ने पर भी योगी का मन विचलित नहीं होता है। योगी की वृत्ति ब्राह्मी–वृत्ति होती है। योगी की बुद्धि स्थिर रहती है। मन एकाग्र रहने के कारण योगी का संकल्प अमोघ होता है। प्रकृति योगी की इच्छा के अनुसार काम करती है। सारी शक्तियाँ व विभूतियाँ एकाग्र मन का ही परिणाम होता है। योगी का आहार–विहार, सोना–जागना उचित समय पर तथा उपयुक्त मात्रा में होता है। इसी से योगी के जीवन में रोग व दुःख नहीं आते। योगी के विचार हमेशा सकारात्मक होते हैं Positive होते हैं। अपने पर अपकार करने वाले पर भी योगी उसका हित ही करता है।

योग एक विचार है, धारणा है। हम अपने पूर्वजों के इतिहास और जीवन शैली देखें तो लगता है आज मनुष्य उन विचारों को सिद्धान्तों को, जीवन मूल्यों को त्याग रहा है अवहेलना कर रहा है वे जिस ज्ञान एवं उन्नति के शिखर पर पहुँचे थे वह अमूल्य है अनुकरणीय है। सिद्धान्त वे होते हैं जो हमेशा अकाट्य होते हैं। आज मनुष्य भौतिकवादी और भोगवादी हो गया है आकण्ठ भोगों में डूब रहा है। अनन्त सुख सुविधाओं के बावजूद हताश और निराश है। वह

न्दर से भयभीत, अशान्त और क्रुद्ध है। लूट, हत्या, वैमनस्य, धोखा, ईर्ष्या की अग्नि में जल हा है। इन सबका एकमात्र कारण योग विद्या से दूर होना है। मानव के मूल धर्म यम-नियम का पालन नहीं हो रहा है।

भगवान् की पूजा भी इसलिए करता है उसे भोग्य पदार्थ मिलते रहें इनमें कमी न हो। आत्म के उत्थान के लिए प्रयत्नशील नहीं है। योग हमें शिव जैसा बना देता है, श्रीकृष्ण जैसा ना देता है। योगी दीन नहीं होता। वह किसी से माँगता नहीं है अपने अन्दर निहित अद्भुत मताओं को जागृत कर उन्हीं से अपने लौकिक और आध्यात्मिक जगत को प्रकाशमय करता । अध्यात्म जगत जिसका प्रकाशित है वही महापुरुष होता है और संसार में बड़े-बड़े कार्य किया करते हैं। हमारे सनातन हिन्दु धर्म के अनुयायियों के इष्ट भगवान् शिव, राम या कृष्ण ते हैं। ये योगेश्वर हैं योग की सम्पूर्ण शक्तियाँ इनमें निहित हैं इसी से जगत में सर्वपूज्य हैं। योग एक विज्ञान है यह हमें अपने मन और प्राण को संयोजित करके रचनात्मक कार्यों में लगे रहने की क्षमता देता है। इस से ही Positive energy बनती है। यह energy ही धीरे-धीरे योगी को देवत्व की श्रेणी में पहुँचा देती है और फिर समाधि के भिन्न-भिन्न सोपानों से होते हुए हमें निर्जीव समाधि तक पहुँचाती है। जो इस विज्ञान से दूर है अनविज्ञ है वह ही निराशा की जिन्दगी जीता है। वह आत्म-निष्ठ नहीं होता। विवेकशील मानव को सदा आत्मोत्थान का प्रयत्न करना चाहिए, इसे अपगत होने से बचाना चाहिए आत्मा ज्ञान एवं शक्तियों का भंडार है यही सद्गुरु हमें बताते रहते हैं। सद्गुरु ही हमें सन्देश देते हैं **'तमसो मा ज्योतिर्गमय'** अर्थात् सौम्य! तू अन्धकार से प्रकाश की ओर चल इसी में तेरा कल्याण निहित है। अन्धकार से प्रकाश की ओर जाने का मार्ग योग ही है। योग ही मनुष्य के तन, मन और बुद्धि को शुद्ध और पवित्र करता है।

आत्म-शक्ति का उत्थान योग से ही होता है। दृढ़ संकल्प एवं सिद्धियाँ योग द्वारा ही संभव हैं।

आज के समय में यद्यपि योग द्वारा साधना की पूर्णता पाना कठिन है। फिर भी इसे लोक कल्याण की ओर लगाया जाय तो विश्व का कल्याण ही होता है। वर्तमान काल में योगी और मोदी जैसी विभूतियाँ भी तप एवं योग के अंगों के पालन करने के कारण ही अपने उद्देश्यों में सफलता पा रहे हैं। प्राचीन काल में जनकादि भी योगी के साथ-साथ राजर्षि हुए हैं जो जगत कल्याण में लगे रहे। आज की विषम परिस्थितियों में देश के लिए वरदान स्वरूप, राष्ट्रीयता के अनन्य उपासक मोदी जी और योगी जी जैसे देश भक्त इस देश को चहुँमुखी उन्नति की ओर ले जा रहे हैं यह देशवासियों के लिए हर्ष व सौभाग्य का विषय है। आज वस्तुतः ही त्यागी एवं कर्मठ नेताओं की आवश्यकता है जिससे समाज में शान्ति, प्रेम एवं सद्भावना बनी रह सकेगी। तमोगुण को दबाकर सतोगुण ऊपर आ रहा है। उन्नति का यही परिचय है।

का प्रयोग होता है। तत्वतः पुरुषों के अन्दर जो चेतना शक्ति है, वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुषों के अन्दर जो मनन करने की शक्ति है, वही स्त्रियों के अन्दर है। पुरुष जिस प्रकार से गन्ध ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी गन्ध ग्रहण करती हैं। पुरुष जिस प्रकार से अपने आपको स्वतन्त्रतापूर्वक सुखी रखना चाहता है, उसी प्रकार से स्त्रियाँ भी अपने आपको सुखी रखना चाहती हैं। जब स्त्रियों का खाना–पीना, सोना–बैठना, बोलना–चालना सब कुछ पुरुषों के समान ही है तो पुरुषों के समान अध्यात्म चिन्तन क्यों नहीं कर सकतीं? क्या उनको आत्मोत्थान का अधिकार नहीं है, क्या वे लोग पुरुषों के समान ही आध्यात्मिक क्षेत्र में आकर अपने आपको पूर्णरूपेण विकसित नहीं कर सकतीं? अवश्य कर सकती हैं। आसन, बन्ध, मुद्रायें क्यों नहीं कर सकतीं? क्या उन लोगों को बिना शिक्षा के अध्यात्म विद्या प्राप्त हो जायेगी और क्या वे उत्थान कर सकेंगी? यद्यपि स्त्रियों को पूर्णरूपेण पतिव्रता और पुरुषों को पत्नीव्रत होना ही चाहिए, तभी गृहस्थ में पारस्परिक सुख हो सकता है अन्यथा नहीं हो सकता, किन्तु पतिव्रत पालन में गुरुदेव बाधक नहीं होते, प्रत्युत पूर्णरूपेण सहायक रहते हैं क्योंकि गुरुदेव का स्वरूप मनुष्य के विकृत मन के अन्दर शुद्ध सात्विक प्रकाश को झिलमिला देता है।)

इस प्रकार से मातृ–शक्ति के प्रति गुरुदेव का बड़ा ऊँचा भाव था। और प्रायः कहा करते थे **''यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'**।

करुणामूर्ति श्री गुरूदेव का 108वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम सहित उनके अन्य आश्रमों में भी विजया दशमी पर्व बड़े धूम–धाम से मनाया जा रहा है। इस पावन वेला पर गुरूदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि–कोटि नमन है।

इस पावन अवसर पर मैं सभी गुरु भाई–बहिनों को हार्दिक बधाई व शुभकामनाएँ देता हूँ।

''ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः''

श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

हरित रोहित का पुत्र था। इसी परम्परा में बाहुक हुआ है जिसका राज्य शत्रुओं ने छीन लिया। बाहुक अपनी पत्नी के साथ वन में चला गया। महर्षि और्व के सानिध्य में रहते हुए बाहुक की वृद्धावस्था के कारण मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी सती होने को उद्यत हुई। महर्षि और्व ने उसे सती होने से रोका क्योंकि वह गर्भवती थी। रानी की सौतों ने ईर्ष्या से उसे भोजन में विष दे दिया। विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ा अपितु विष को लिये हुए ही बालक का जन्म हुआ। गर सहित पैदा होने के कारण 'सगर' नाम पड़ा।

सगर यशस्वी राजा थे। सगर ने गुरुदेव की आज्ञा मानकर तालजंघ, यवन, शक, हैहय और बर्बर जाति को पराजित कर दंड दिया। और्व ऋषि के उपदेशानुसार सगर ने अश्वमेघ यज्ञ किया। उसके यज्ञ के घोड़े को चुराकर इन्द्र कपिल मुनि के आश्रम में बाँध आया। महारानी सुमित के गर्भ से उत्पन्न सगर के पुत्रों ने घोड़ा खोजने निकले, पूर्व उत्तर के कोने पर, कपिल मुनि के पास बँधा दिखाई दिया। कपिल मुनि समाधिस्त थे। सगर के साठ हजार पुत्र अपशब्द बोलते हुए इसे मार डालो, इसे मार डालो कहकर कपिल जी को अनिष्ट पहुँचाने हेतु दौड़े। कपिल मुनि जैसे महापुरुष का तिरस्कार उन सभी के शरीर में ही आग जल उठी, क्षणभर में सब जलकर राख हो गये।

स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः।

महद्व्यक्ति क्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात।।11।।

(अ. 8, स्क. 1)

महाराज सगर की दूसरी पत्नी केशनी के गर्भ से असमंजस नाम का पुत्र हुआ था। इसके पुत्र का नाम अंशुमान था। वह दादा सगर की सेवा में लगा रहता। असमंजस पूर्व जन्म के योगी थे। संग-दोष के कारण योग से विचलित हो गये थे। परन्तु उन्हें अपने पूर्व जन्म का स्मरण बना हुआ था। अतः इस जन्म में वे ऐसा कार्य करते जिससे उन्हें कोई प्रिय न समझे। वे पागल सा दीखते। बच्चों को पकड़ कर सरयू में डुबो देते। यह सब देखकर महाराज ने उनका त्याग कर दिया। वन जाने से पूर्व असमंजस ने अपने योग बल से उन सब मरे बालकों

को जीवित कर दिया। यह सब देख कर अयोध्यावासियों तथा राजा सगर को बड़ा आश्चर्य हुआ और पश्चाताप भी।

असमंजस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम्।
जातिस्मरः पुरा सङ्गाद् योगी योगाद् विचालितः।।6।।
आचरन् गर्हितं लोके ज्ञातिनां कर्म विप्रियम्।
सरय्वां क्रीडतो बालान् पास्यदुन्देजयञ्जनम्।।7।।
अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान् पुनरागतान्।
दृष्टवा विसिस्मिरे राजन राजा चाप्यन्वतप्यत।।8।।
एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै।
योगेश्वर्येण बालांस्तान् दर्शयित्वा ततो ययौ।।

(अ. 8 स्क. 1)

राजा सगर ने अपने प्रिय पौत्र अंशुमान को यज्ञ का घोड़ा ढूँढ़ने की आज्ञा दिया। अन्ततः अंशुमान वहाँ पहुँचे जहाँ उनके चाचाओं की भस्मी पड़ी थी। पास ही घोड़ा तथा कपिल भगवान् को देखा। अंशुमान प्रणिपात होकर प्रणाम करते हुए भगवान् कपिल की एकाग्रमन से स्तुति करने लगा। उसने कहा–प्रभो! संसार के शरीर धारी सत्व, रज, तम के अधीन हैं। वे जाग्रत–स्वप्न में केवल गुणमय पदार्थों, विषयों तथा सुषुप्ति में केवल अज्ञान–ही–अज्ञान देखते हैं। कारण मात्र यह है कि वे आपकी माया से मोहित हैं। वे बहिर्मुखता के कारण बाह्य पदार्थों का ही अनुभव करते हैं, पर अपने ही हृदय में स्थित आपको नहीं देख पाते। समस्त प्राणियों के आत्मा प्रभो! आज आपके दर्शन से मेरे मोह की वह दृढ़ फाँसी कट गयी जो कामना, कर्म और इन्द्रियों को जीवन दान देती है।

ये देहभाजस्त्रिगुण प्रधाना
गुणान् विपश्यन्त्युत या तमश्च।
यन्मायया मोहितचेतस्ते
विदुः स्वसंस्थं न बहिः प्रकाशाः।।23।।
त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्धया गृहादिषु।
भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः।।26।।

(अ. 8 स्क. 1)

अंशुमान के स्तुति से प्रसन्न हो, उन्होंने अंशुमान पर बड़ा अनुग्रह किया और बोले–बेटा! तुम्हारे पितामह का यज्ञ पशु यह है। तुम इसे ले जाओ। तुम्हारे जले हुए चाचाओं का उद्धार

केवल गंगा जल से होगा और कोई उपाय नहीं है। महाराज सगर ने यज्ञ पूरा किया तथा समय आने पर उन्होंने महर्षि और्व के बतलाये मार्ग से परमपद को प्राप्त हुये।

नवम् स्कन्ध के नवमें अध्याय में भगीरथ चरित्र एवं गंगावतरण की कथा भगवान शुकदेव जी ने परीक्षित को विस्तार से सुनाया है।

अंशुमान ने व उनके पुत्र दिलीप ने गंगा जी को लाने की कामना से बहुत वर्षों तक घोर तपस्या किया परन्तु सफलता नहीं मिली तथा समय आने पर उनकी भी मृत्यु हो गयी।

दिलीप के पुत्र भगीरथ के कठोर तपस्या से प्रसन्न हो भगवती गंगा ने दर्शन दिया और वर माँगने को कहा। भगीरथ ने उनसे कहा–आप मर्त्यलोक में चलिए।

गंगाजी ने कहा–जिस समय मैं स्वर्ग से पृथ्वी तल पर गिरूँ उस वेग को धारण करने वाला चाहिए नहीं तो मैं पृथ्वी को फोड़ कर रसातल में चली जाऊँगी। इसके अतिरिक्त मैं पृथ्वी पर नहीं आना चाहती क्योंकि लोग मुझमें अपने पाप धोयेंगे।

भगीरथ ने कहा–माता! जो ब्रह्मनिष्ठ हैं वे अपने अंग स्पर्श से तुम्हारे पापों को नष्ट कर देंगे और समस्त प्राणियों के आत्मा रुद्रदेव तुम्हारा वेग धारण करेंगे। भगीरथ अब शंकरजी की उपासना में लग गये। थोड़े दिनों में महादेव जी प्रसन्न हो गये। वे भगीरथ की बात मान सावधान होकर गंगाजी को अपने सिर पर धारण किया। इसके बाद त्रिभुवन पावनी गंगाजी को भगीरथ वहाँ ले गये जहाँ पितरों के शरीर राख के ढेर बने पड़े थे। गंगासागर–संगमतट पर पहुँच गंगाजी ने अपने जल में राख डुबो दिया जिसके फलस्वरूप वे सभी पितर स्वर्ग में चले गये।

भगीरथ के वंश परम्परा में सौदास नामक राजा हुआ जो वसिष्ठ जी के शाप से राक्षस हो गया था। एक राक्षस को महाराज सौदास ने मार दिया था। उसका भाई बदला लेने हेतु रसोइये के रूप में राजा के भोजनालय में काम करने लगा। एकदिन राजा के यहाँ भोजन करने आमंत्रित होकर गुरु वसिष्ठ जी आये। वसिष्ठ जी ने परोसी जाने वाली वस्तुओं को अभक्ष्य देखकर क्रोध में राजा को राक्षस होने का श्राप दे दिया। सर्वसमर्थ वसिष्ठ जी ने योग दृष्टि से देखकर जान लिया कि यह तो राक्षस का कार्य था, तब उस शाप को बारह वर्ष के लिये कर दिया।

स्वयं को निरपराध होते हुए शाप पाने पर राजा सुदास भी अपनी अंजली में जल लेकर गुरु वसिष्ठ को शाप देने के लिए उद्यत हुये परन्तु उनकी पत्नी ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। इस पर सौदास ने विचार किया कि दिशाएँ, आकाश, पृथ्वी सब के सब जीव से भरे हुये हैं। यह विचार कर संकल्पित तीक्ष्ण जल अपने पैरों पर डाल लिया। उनके पैर काले पड़ गये।

उनका एक नाम ''कल्माषपाद'' पड़ा दूसरा जीवों पर कृपा करने के कारण नाम ''मित्रसह'' पड़ा। इस वंश परम्परा में अस्मक और आगे की पीढ़ी में महापराक्रमी राजा खटवांग हुये इन्हें मृत्यु से पूर्व दो घड़ी पहले अपने मृत्यु का ज्ञान हो गया था। अतः वे शरीर आदि में अनात्म पदार्थों में जो अज्ञानमूलक आत्मभाव था उसका परित्याग कर दिया और अपने वास्तविक आत्मस्वरूप में स्थित हो गये। वह स्वरूप साक्षात् ब्रह्म है। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, शून्य के समान ही है परन्तु वह शून्य नहीं, परम सत्य है। भक्तजन उसी वस्तु को ''वासुदेव'' नाम से वर्णन करते हैं–

इति व्यवसितो बुद्धया नारायणगृहीतया।
हित्वान्यभावमज्ञानं ततः स्वयं भावमाश्रितः।।48।।

यद् तद् ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम्।
भगवान् वासुदेवेति यं गृणन्ति हिसात्वताः।।49।।

कलामशायर–

खुशियाँ ढूँढ़ लीं

मैंने जब खुद में ही अपनी चन्द कमियाँ ढूँढ़ लीं
मुझको कुछ ऐसा लगा जैसे कि खुशियाँ ढूँढ़ लीं
दूर तक काँटे बिछे थे जिन्दगी की राह में
ढूँढ़ने वालों ने उनमें फिर भी कलियाँ ढूँढ़ लीं

एक दिन इक पल को वो मेरे अन्दर मिल गया
मैंने इस छोटे से लम्हे में ही सदियाँ ढूँढ़ लीं
जब मुझे मेरी खुशी ही दे न पायी जिन्दगी
मैंने तब उसकी खुशी में अपनी खुशियाँ ढूँढ़ लीं

और मुझ पे था क्या बस साँस की इक नाव थी
मैंने उसमें बैठकर खुद अपनी नदिया ढूँढ़ ली
मैं भला क्या ढूँढ़ पाता ये तो उसकी देन थी
जो मेरे दिल ने 'कुँअर' हीरे की कनियाँ ढूँढ़ लीं

–कुँवर बेचैन

श्री मत्स्येन्द्रनाथ की योग-दीक्षा

(श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा)

'महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ' नामक लेख के अन्तर्गत महापुरुषों के अवतार ग्रहण सम्बन्धी रहस्यों का मूल कारण, समय के प्रवाह में संस्कारवश पीड़ित मुमुक्षुजनों को इस असार-संसार से तार देना हुआ करता है, ऐसे बताया गया है। ऐसे लोक कल्याण करने वाले सिद्ध संतों का वर्णन निम्न श्लोक में बहुत ही उचित ढंग से किया गया है :

शान्ता महान्तो निवसन्ति संतो
बसन्त वल्लोकहितं चरन्त:।
तीर्णा: स्वयं भीमभवार्णवं जना-
नहेतुनान्यानपि तारयन्त:।।

-विवेकचूड़ामणि 39

इस दुस्तर संसार सागर से स्वयं पार होकर शांत और महान् ऐश्वर्य युक्त संतजन नि:स्वार्थ बुद्धि से दूसरे लोगों को भी तारते हुए इस पृथ्वी पर बसन्त के समान लोकोपकार करते हुए निवास करते हैं। शैशवावस्था से ही वैराग्यमय भावों में निरन्तर मन को निहित रखने वाले मत्स्येन्द्रनाथ ने जब शक्ति युक्त युवावस्था में प्रवेश किया, तब उनके अन्दर परम शक्ति सम्पन्न सद्गुण की प्राप्ति के लिये उत्तम भाव उत्पन्न होने लगे। उद्यमी व्यक्ति जहाँ अपने पुरुषार्थ से अलभ्य वस्तु की प्राप्ति कर लिया करता है वहीं आलसी अपने पुरुषार्थ को भी खो बैठता है। श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने अपने को योग विद्या में पूर्णरूपेण पारंगत करने की अभिलाषा से भगवान् सदाशिव को श्री सद्गुरु रूप में वरण किया तथा इस कठिन इच्छा को कार्यान्वित करने के लिए बद्रिकाश्रम के घनघोर जंगलों में तपश्चर्या में संलग्न हो गये। 'गुरु' की प्राप्ति सभी को नहीं हुआ करती है। विरले भाग्यवान् पुरुषों को वह 'गुरुसत्ता' स्वयं अपनाया करती है। इसीलिए तो संत-वाणी जगह-जगह स्वयं मुखरित हो उठी है।

यह जग विष की बेलरी,
गुरु अमृत की खान।
शीस दिये जौ गुरु मिलें,
तो भी सस्ता जान।।

प्राणों को जयत्व से समग्र शरीर को दाहिने पैर के अँगूठे पर साधकर, करबद्ध दोनों हाथ आकाश की ओर किये मत्स्येन्द्रनाथ अपने मन को भगवान् सदा शिव की पापहर मूर्ति में निश्चल रूप से बाँधे हुए घन–घोर तप में प्रविष्ट हुये। ऐसा करते–करते बारहवां वर्ष जब व्यतीत होने वाला था, तब अनेकों सिद्ध, देवगण तथा स्वयं भगवान् विष्णु एवं ब्रह्माजी ने साक्षात् प्रकट होकर विविध प्रकार के वरों से मत्स्येन्द्रनाथ को सद्कृत् करना चाहा तथा इस कठिन तपश्चर्या से विरत होने के लिए सुझाव देते रहे परन्तु दृढ़ संकल्प से हृदयस्थित भगवान् सदाशिव के पास परम पावनी मूर्ति के अविचल ध्यान में निमग्न मत्स्येन्द्रनाथ अपनी तत्पश्चर्या से तभी विरहित हुये जब स्वयं कैलाशनाथ भगवान् शंकर ने प्रेम आह्लादित होकर अपने वरद्हस्त को उनके सिर पर रखकर कहा–'वत्स! तुम्हारे मनोभावों को जानकर हमें अतीव प्रसन्नता हुई है, तुम वर माँगो।'

भगवान् आदि योग–प्रणेता शंकर जी को अपने समक्ष देखकर मत्स्येन्द्रनाथ बोले–'प्रभो! आप जगद्गुरु हैं। यदि आप हम पर प्रसन्न हैं, तो हमें गुरु–दीक्षा दें तथा साथ ही आप अपने वेष से हमें आभूषित भी कर दें। तथास्तु, कहकर, भगवान् सदाशिव मत्स्येन्द्रनाथ को योग–दीक्षा देने एवं अपने वेष से अलंकृत करने के लिए कैलाश ले आये।

वहाँ भगवान् शंकर जी ने मत्स्येन्द्रनाथ को योग–दीक्षा प्रदान करके अपने एक–एक वेष सम्बन्धी वस्तुओं से अलंकृत करते हुए उन वेषों के रहस्यमय अर्थों का भी उपदेश किया।

विभूति महत्त्व–मत्स्येन्द्रनाथ के ऊपर भस्म डालकर भस्म का अर्थ बताते हुए भगवान् ने कहा–'बेटा! इस भस्म को धारण करने से तू पृथ्वी के सदृश हो गया, जिस प्रकार पृथ्वी अच्छी व बुरी दोनों वस्तुओं से अप्रभावित है, उसी प्रकार से ज्ञानी द्वारा सद्–व्यवहार तथा अज्ञानियों द्वारा किया गया कुत्सित व्यवहार तुम्हें प्रभावित नहीं करेगा।

नाद–यज्ञोपवीत:–पुनः नाद जनेऊ पहनाकर भगवान् आशुतोष ने कहा–'हे वत्स! इस नाद को धारण करके तुम आज नूतन जन्म ग्रहण कर रहे हो। यह सदा तुम्हें सांसारिक दोषों से दूर रखकर आत्मोत्कर्ष की ओर बढ़ाता रहेगा। इस 'नाद' को ही 'गुरु' समझो। यहाँ 'नाद' के सम्बन्ध में शास्त्रोक्त विचार पाठकों को समझना चाहिए। 'नाद' का अर्थ है 'अनाहत' अर्थात् बिना दो भौतिक वस्तुओं के टकराये उत्पन्न हुई ध्वनि। इस नाद के बारे में नाद बिन्दु उपनिषद् में निम्न प्रकार से वर्णन मिलता है–

श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो
नानाविधो महान्।
वर्धमाने तथाभ्यासे
श्रूयते सूक्ष्म् सूक्ष्मतः।।

आदौ जलधिजीमूत
भेरी निर्झर सम्भवः।
मध्ये मर्दल शब्दाभो
घंटाकाहलजस्तथा।।
अन्ते तु किंकिणीवंश–
वीणाभ्रमर निःस्वनः।
इति नाना विधा नादाः
श्रूयन्ते सूक्ष्म सूक्ष्मतः।।
महति श्रूयमाणे तु
महा भेर्यादिक ध्वनौ।
तत्र सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं
नाद मेव परामृशेत्।।
घन मुत्सृज्य वा सूक्ष्मे
सूक्ष्म मुत्सृज्य वा घने।
रममाणमपि क्षिप्तं
मनो नान्यत्र चालयेत्।।

अर्थात्–साधक अपनी प्राथमिक अभ्यासावस्था में नाद, जोर–जोर बादल की गड़गड़ाहट, समुद्र गर्जना, इत्यादि की ध्वनियों के समान सुना करता है। परन्तु साधना एवं अभ्यास को उत्तरोत्तर विधिपूर्वक बढ़ाते रहने पर ध्वनि मधुर एवं मंद होकर किंकिणी, भ्रमर–गुन्जन, वंशी, वीणा ध्वनि की तरह सुनाई पड़ने लगती है। इन ध्वनियों में मंद नाद का एकाग्रचित्त से चिन्तन करना चाहिए। साधक को मंद नाद से घने तथा नाद से मंद नाद की ओर चिन्तन करते हुए अपने मन को नाद (ध्वनि) में लय रखना चाहिए। यही नाद अन्त में समाधि का जनक हो जाया करता है। नाद–योग कठिन होते हुए भी सद्गुरु कृपा एवं साधक की पात्रता के आधार पर सहज साध्य हुआ करता है। कठिनता के सम्बन्ध में महात्मा पलट दास की निम्नलिखित पंक्ति विचारणीय हैं–

'रण का चढ़ना सहज है
मुश्किल करना योग।'

नाथ–सम्प्रदाय के सिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ, गोरक्षनाथ, भर्तृहरिनाथ इत्यादि सिद्धों का नाम आज भी विश्व विदित है। इन लोगों ने नाद–योग की साधना को ही अपने पंथ में प्रधानता दी है। ऐसे हठयोग, राजयोग को भी इस पंथ में समान रूप से आदर दिया गया है। निम्न कुछ

पंक्तियों में श्रीभर्तृहरिनाथ जी ने नाद के विषय में निज अनुभव व्यक्त किया है–

बीज नहीं अंकुर नहीं।
नहीं रूप रेष आकार नहीं।
उदै अस्त तहाँ कह्या न जाई।
तहाँ भरथरी रहा समाई।।
मारी मयूर साधौ निंद।
सुपिनै जाता राषै बिंद।
जरा मरण नहिं व्यापै रोग।
कहै भरथरी धनि–धनि योग।।
नादा बिंद बजाइले दोऊ।
पुरिलै अनहद बासा।।
एकांतिका बासा सौधिले भरथरी।
कहं गोरष मछिन्द्रका वासा।।

भगवान् आदिनाथ ने नाद–योग की विधिवत् दीक्षा मत्स्येन्द्रनाथ को प्रदान करने के अतिरिक्त कई कुण्डलादि चिन्हों को भी दिया तथा उनके रहस्यमय अर्थ का भी बोध कराया। उत्तमाधिकारी तथा साथ ही साथ योग जिज्ञासु होने के कारण कुछ ही दिनों में जगद्गुरु भगवान् शिव की अहैतुकी कृपा से मत्स्येन्द्रनाथ पूर्ण योगवित् बन गये। इसके पश्चात् भगवान् ने मत्स्येन्द्रनाथ को आज्ञा देकर कहा–"अब तुम इस महान योग–विद्या द्वारा संसार के मुमुक्षु जनों का कल्याण करो। पुत्र! संसार में योग–विद्या को प्राप्त करने वालों की तीन श्रेणियाँ हैं। प्रथम उत्तमाधिकारी, द्वितीय मध्यमाधिकारी तथा तृतीय कनिष्ठ अधिकारी। वे संस्कारी जीव जो मात्र सद्गुरुदेव की शक्तिपात प्राप्त करके अपने वैराग्यभाव से सहज ही योग को प्राप्त कर लेते हैं, यहां जीव उत्तमाधिकारी कहलाते हैं। यदि मध्यमाधिकारी जीव को योगवित बनाना हो तो उनको तप स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान में विशेषतया लगाना चाहिए। यदि कनिष्ठ अधिकारी को भी इस मार्ग में दीक्षित करना हो तो, ऐसे अधिकारियों को यम–नियमादिक (अष्टाङ्ग–योग) आठ उपायों में प्रवेश कराना चाहिए। कालान्तर में सम्पूर्ण चराचर उसी ब्रह्म में विलीन होगा। परन्तु पात्रता के भेद से शिक्षा दीक्षा में भी अन्तर आ ही जाया करता है। उपर्युक्त भावों की पुष्टि वेद ने भी की है–

इमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां वैश्याय च शूद्राय स्वाय चारणाय च।

अर्थात्–'यह कल्याणमयी वाणी सब मनुष्यों के लिये है। इसका उपदेश सब को दिया

जाना चाहिए। ब्राह्मण और क्षत्रिय को वैश्य और शूद्र को, अपने को और पराये को।'

यहां 'पराया' शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत दायरे में लिया गया है। इस पराये शब्द के अन्तर्गत सृष्टि के सभी जीव समाविष्ट किये जा सकते हैं। समय के अन्तराल में ऐसे कितने ही योग युक्त महापुरुष हुये हैं जिन्होंने समाज–कल्याण का भाव रख करके अहंकार की आँधी में भटकते जीवात्माओं को योगेश्वर्य के अद्‌भुत चमत्कारों से आकर्षित कर उनको परम लक्ष्य की प्राप्ति करा दी है। महात्मा ज्ञानेश्वर देव जी द्वारा शक्ति पातित भैंस के बच्चे का वेद ध्वनि करना। यह सब अनेकों ऐतिहासिक घटनायें योग शक्ति के ज्वलन्त उदाहरण हैं। यहाँ एक ऐसी ही घटना जो कि हमारे परम पूज्य सहज कृपालु श्री गुरुदेव जी से सम्बन्धित है श्रद्धालु योग जिज्ञासु जनों के हितार्थ प्रकट करना उचित होगा।

वैसे तो आनन्दकन्द श्री गुरुदेवजी (योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) के प्रत्येक जगह के योग प्रचार कार्य–क्रमों में अलौकिक घटनाओं का प्रवाह उमड़ता ही है। जो सत्संगी या हमारे गुरु–भाई हैं उनसे यह बातें छिपी नहीं हैं। परन्तु एक बार के योग प्रचार कार्यक्रम में एक सद्‌गृहस्थ किसान ने श्री गुरुदेवजी से विनम्र प्रार्थना की कि महाराज जी जब आपके बच्चे आरती के पश्चात् 'प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो' की ध्वनि लगाते हैं ठीक उसी समय ईख से रस निकालने वाले कोल्हू में चल रहे बैलों में से एक बैल पत्थरवत् खड़ा हो जाता है। उसकी दोनों आँखें खुली ऊपर उलटी रहती हैं। परन्तु ध्वनि के बन्द होने पर वह सहज रूप से पुनः अपने कार्य में लग जाता है। अनेक प्रयास करके मैं हार गया, परन्तु ध्वनि के समय पत्थर–मूर्ति को तरह जड़ीभूत हुआ वह बैल एक इंच भी न हिलता है न आगे बढ़ता है। श्री गुरुदेवजी ने सहज मुस्कान से उपस्थित जन समुदाय को बताया कि ध्यान में एकाग्रचित्त होकर जब मेरे साधक बच्चे दिव्य अनुभूतियों में निमग्न मन से ध्वनि करते हैं तो उस समय पास ही मशीन में लगा वह बैल भी अपने पूर्व जन्मादिक शुभ संस्कारवश एकाग्रावस्था को प्राप्त हो जाता है। ऐसे महापुरुषों के सानिध्य को प्राप्त करके मूढ़ावस्था के जीव (पशु इत्यादि) जब कृतार्थ हो सकते हैं तो मनुष्यों का तो परम उत्थान अवश्य ही हो जाया करता है। इसीलिये भगवान् आदिनाथ श्री महादेव जी की आज्ञा पाकर मत्स्येन्द्रनाथ जी ने योग का अद्‌भुत मार्ग संसार में फैलाया। इतिहास साक्षी है, इस भारत–भूमि में ही नहीं अपितु चीन, तिब्बत तथा अन्य पश्चिम दिशा के देश के लोगों ने भी योग–मार्ग को अपना करके उस समय अपने को भौतिक एवं पारलौकिक लाभों से कृतार्थ कर लिया। मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से गोरक्षनाथ महाराज, भर्तृहरि इत्यादि अनेक सिद्धों का आविर्भाव हुआ, जिनकी याद को आज भी जागृत किये हुये अनेक तीर्थ, नगर, नेपाल तथा भारत भूमि में स्थित हैं।

योगनिष्ठ योगी की पहचान

—राजकुमारी त्रिखा

योगसिद्धियों से आकर्षित होकर अनेक व्यक्ति योग साधना करना चाहते हैं, तथा योग्य योगी की तलाश करने लगते हैं। कुछ धूर्त तथा स्वार्थी लोग योगी होने का ढोंग करते हैं, और विशिष्ट जादुई कारनामे दिखाकर, स्वयं को योगी कहते हैं। कुछ व्यक्ति यक्षिणी, कर्ण पिशाचिनी अथवा अन्य निम्न कोटि के ध्येय इष्ट को सिद्ध करके भी आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। किसी एक कान्फ्रेंस में बाल्टी बाबा नाम से प्रसिद्ध एक व्यक्ति ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। उसने हॉल में उपस्थित लोगों को कहा कि वे कोई एकाध वाक्य लिख कर उसकी जलपूर्ण बाल्टी में डाल दें तथा वह उस कागज को निकालकर उस पर लिखा पढ़ देगा, यद्यपि पानी से स्याही के अक्षर धुल चुके होंगे। आश्चर्य हुआ जब उस व्यक्ति ने मेरी आँखों के सामने अपनी बाल्टी से कागज निकालकर उस पर लिखा वाक्य पढ़ा, तथा लेखक ने उन शब्दों की पुष्टि भी की।

अस्तु, कहने का तात्पर्य है कि मात्र सिद्धि के प्रदर्शन से किसी को सिद्धयोगी नहीं कहा जा सकता। आज के अर्थप्रधान युग में योग भी व्यापार बन गया है। देश विदेश में अनेक संस्थाएँ शुल्क लेकर योग सिखा रही हैं, रोग दूर करने का आश्वासन देती हैं। इच्छुक साधकों को अपनी संस्था का सदस्य बनाती हैं। तरह–तरह से धन वसूलती हैं। आज धर्म का कारोबार करोड़ों में है। अनेक व्यापार सम्बन्धी समाचार चैनल्स में यह समाचार बताया गया है। ऐसे गुरु से कभी सच्चा ज्ञान नहीं मिलता।

अब प्रश्न उठता है कि सच्चे योगी की पहचान कैसे की जाये ?

उच्चतम अवस्था को पहुँचे हुए योगी, संसार की मोह माया से दूर एकान्त में ही रहते हैं। आज भी हिमालय की गुफाओं में हजारों वर्ष की आयु वाले योगी विद्यमान हैं। कभी किसी कारणवश, किसी पूर्वजन्म के संस्कार का भुगतान करने के लिए, वे विविध रूप धारण करके पृथ्वी पर आते हैं, और अपना काम समाप्त करके वापिस अपने स्थान पर चले जाते हैं। उन्हीं से दीक्षित कोई सत्पुरुष योगमार्ग पर प्रवृत्त होता है, स्वयं अपना तथा जगत का कल्याण करता है। ऐसे सत्पुरुष भी योगसाधना पूरी करके ही सिद्धयोगी बन पाते हैं।

शास्त्रों में ऐसे योगियों की पहचान बताई गई है। चित्त की वृत्तियों के पूरी तरह रुक जाने

के कारण, उस साधनारत योगी का मन अपने ध्येय विषय में पूरी तरह निमग्न हो जाता है। उसे सांसारिक परिवेश का ज्ञान नहीं रहता। उसके आसपास कितनी ही हलचल क्यों न हो, उसका मन समाधि में उसी प्रकार निश्चल हो जाता है, जिस प्रकार वायु–रहित स्थान में रखे हुए दीपक की लौ, बिना काँपे लगातार, निश्चल जलती रहती है। शांतिपर्व 316. 18–24 तक के श्लोकों में योगयुक्त साधक का विस्तृत वर्णन किया गया है।

''जिस प्रकार तृप्त हुआ मनुष्य सुखपूर्वक निद्रामग्न रहता है, उसी प्रकार योगयुक्त पुरुष भी प्रसन्नता से भरा रहता है तथा सदा समाधि में लीन ही रहना चाहता है। जिस प्रकार तेल से भरा दीपक वायुरहित स्थान में एक तार निश्चलरूप से जलता रहता है, उसकी दीपशिखा (लौ) स्थिरतापूर्वक ऊपर की ओर उठी रहती है, उसी प्रकार समाधिलीन योगी को मनीषी पुरुष स्थिरमना कहते हैं। जिस प्रकार बादलों द्वारा बरसाई गई वर्षा से पर्वत नहीं काँपते, उसी प्रकार अनेक प्रकार के एकाग्रता भंग करने वाले साधन योगी की समाधि भंग नहीं कर सकते। उसके पास बहुत से शंख नगाड़े बजाये जायें, गीत गाये जायें, तो भी उसका ध्यान भंग नहीं होता। यही उसकी सुदृढ़ समाधि की पहचान है। जैसे नियन्त्रित मन वाला व्यक्ति हाथ में तेल भरा कटोरा लेकर सावधानी से सीढ़ियाँ चढ़े और तभी बहुत से पुरुष हाथ में तलवार आदि लेकर उसे डराने धमकाने लगें, फिर भी वह व्यक्ति उन शस्त्रधारियों से डर कर भी एक बूँद तेल भी कटोरे से नहीं गिरने देता, उसी प्रकार योग की उच्च स्थिति में पहुँचा हुआ एकाग्र मना योगी समाधि से विचलित नहीं होता, क्योंकि उसकी इन्द्रियाँ तथा मन स्थिर हैं। यही योगयुक्त मुनि के लक्षण हैं।''

श्रीमद्भगवत् गीता के छठे अध्याय के 22वें श्लोक में भी योगयुक्त योगी का इसी प्रकार का वर्णन मिलता है–

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः। *–श्रीमद्भगवतगीता–6.22*

समाधि से उठने के बाद भी उच्च अवस्था को प्राप्त योगी पर समाधि का प्रभाव रहता है। वह सामान्य व्यक्ति की भाँति जीवन की स्नान भोजन निद्रा आदि आवश्यकताओं को पूरा करता है, फिर भी उसके व्यवहार में साधना का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। उसका मन राग द्वेष, ईर्ष्या, काम क्रोध से मुक्त होने के कारण शान्त रहता है, क्योंकि योगसाधना द्वारा सारे नकारात्मक भावों का परिष्कार हो जाता है। वह संसारी व्यक्तियों की भाँति विषयभोगों के पीछे नहीं भागता। समाधि से प्राप्त दिव्य आनन्द के सामने विषयभोगों से मिलने वाला आनन्द उसे तुच्छ लगता है। उस आनन्द की स्थिति में योगी महान् से महान् दुःख से भी विचलित नहीं

होता। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं–

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।। —*श्रीमद्भगवद्गीता 6.22*

ऐसे योगी का जीवन सतोगुणमय होता है। वह शत्रु–मित्र, सुख–दुःख, मान–अपमान, सबको एक समान समझता है। उसे सभी प्राणियों में अपनी आत्मा का ही दर्शन होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।। —*श्रीमद्भगवद्गीता 6.29*

महाभारत के आश्वमेधिक पर्व के अन्तर्गत अनुगीतापर्व में योगी की इस स्थिति को अधिक विस्तार से समझाया गया है। वेदव्यास कहते हैं–आत्मसाक्षात्कार के बाद शरीर व आत्मा का भेद समझ में आ जाता है। जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न में किसी अपरिचित व्यक्ति को देखने के पश्चात्–जब जाग्रत अवस्था में उसे आमने–सामने देखता है, तो तुरन्त पहचान जाता है कि हाँ यह वही व्यक्ति है जो मुझे स्वप्न में दिखा था। इसी प्रकार साधना परायण योगी, समाधि अवस्था में आत्मा को जिस रूप में देखता है, समाधि से उठने के पश्चात् (व्युत्थित अवस्था में) भी उसी तरह देखता रहता है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति मूँज से उसके सारभाग सींक को अलग करके देखता है, उसी प्रकार योगी आत्मा को शरीर से पृथक् अनुभव करता है।

द्रष्टव्य आश्वमेधिक पर्व 14.21–23

ऐसी स्थिति में योगी के लिये कोई पराया नहीं रहता। उसके लिये तो वसुधैव कुटुम्बकम का सिद्धान्त चरितार्थ होता है। उसे सृष्टि के कण–कण में अपने इष्टदेव का दर्शन होता है। यही कारण है कि उसे संसार के सभी प्राणी अपने समान ही लगते हैं। वह दूसरों के दुःख–सुख को अपना ही दुःख–सुख मानता है। उसकी सुख भोग विलास में कोई रुचि नहीं रहती।

ऐसा सादगीभरा व योगिक जीवन जीने वाला ही योगयुक्त योगी होता है। कमीशन एजेन्टों के माध्यम से आत्मप्रशंसा करा कर शिष्य मंडली का धन दक्षिणा के रूप में पाकर प्रच्छन्न रूप से विलासितापूर्ण व अनैतिक जीवन जीने वाले तथाकथित योगीसमन्यमाना धूर्त समाज के लिए अभिशाप होते हैं। अतः आत्मकल्याण के इच्छुक तथा योग के जिज्ञासुओं को सतर्कतापूर्वक परीक्षा करके ही योगगुरु की शरण में जाना चाहिए।

ध्यान और उसकी महत्ता

(योग–साधकों के लिए ध्यान की साधना का अभ्यास परम आवश्यक रहता है। बिना इस अभ्यास की परिपक्वता के समाधि सिद्धि होती ही नहीं। इसलिए ध्यान की अपनी महत्ता है। पढ़िए इस सम्बन्ध में शास्त्रीय अभिमत।

—सम्पादक)

कुछ लोग मन की स्थिरता के लिए स्थूल रूप का ध्यान करते हैं। स्थूल रूप के चिन्तन में लगकर जब चित्त निश्चिल हो जाता है, तब सूक्ष्म रूप में वह स्थिर रहता है। भगवान शिव का चिन्तन करने पर सब सिद्धियाँ प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाती हैं। अन्य मूर्तियों का ध्यान करने पर भी शिव रूप का अवश्य चिन्तन करना चाहिए। जिस–जिस रूप में मन की स्थिरता लक्षित हो, उस–उसका बारम्बार ध्यान करना चाहिए। ध्यान पहले सविषय होता है, फिर निर्विषय होता है—ऐसा ज्ञानी पुरुषों का कथन है। इस विषय में कुछ सत्पुरुषों का मत है कि कोई भी ध्यान निर्विषय होता ही नहीं है। बुद्धि की ही कोई प्रवाहरूपा सन्तति 'ध्यान' कहलाती है, इसलिए निर्विषय बुद्धि केवल निर्गुण निराकार ब्रह्म में प्रवृत्त होती है।

अतः सविषय ध्यान प्रातःकाल के सूर्य किरणों के समान ज्योति का आश्रय लेने वाला है तथा निर्विषय ध्यान सूक्ष्म तत्व का अवलम्बन करने वाला है। इन दो के सिवाय और कोई ध्यान वास्तव में नहीं है। अथवा सविषय ध्यान साकार स्वरूप का अवलम्बन करने वाला है तथा निराकार स्वरूप का जो बोध या अनुभव है, वही निर्विषय ध्यान माना गया है। वह सविषय और निर्विषय ध्यान ही क्रमशः सबीज और निर्बीज कहा जाता है। निराकार का आश्रय लेने से उसे निर्बीज कहा जाता है। और साकार का आश्रय लेने से सबीज की संज्ञा दी गयी है। अतः पहले सविषय या सबीज ध्यान करके अन्त में सब प्रकार की सिद्धि के लिए निर्विषय अथवा निर्बीज ध्यान करना चाहिए। प्राणायाम करने से क्रमशः शान्ति आदि दिव्य सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं। उनके नाम हैं—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद।

समस्त आपदाओं के शमन को शान्ति कहा गया है। तम (अज्ञान) का बाहर और भीतर से नाश ही प्रशान्ति है। बाहर और भीतर जो ज्ञान का प्रकाश होता है, उसका नाम दीप्ति है तथा बुद्धि की जो स्वस्थता (आत्मनिष्ठा) है, उसी को प्रसाद कहा गया है। बाह्य और आभ्यन्तर सहित जो समस्त करण हैं, वे बुद्धि के प्रसाद से शीघ्र ही स्वच्छ (निर्मल) हो जाते

है।

ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान प्रयोजन—इन चार को जानकर ध्यान करने वाला पुरुष ध्यान करे। जो ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न हो, सदा शान्तचित्त रहता हो, श्रद्धालु हो और जिसकी बुद्धि प्रसाद गुण से युक्त हो, ऐसे साधक को ही सत्पुरुषों ने ध्याता कहा है। ''ध्यै चिन्तायाम्'' यह धातु है। इसका अर्थ है चिन्तन।

भगवान शिव का बारम्बार चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। जैसे थोड़ा–सा भी योगाभ्यास पाप का नाश कर देता है, उसी तरह क्षणमात्र भी ध्यान करने वाले पुरुष के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक, विक्षेपरहित चित्त से परमेश्वर का जो चिन्तन है, उसी का नाम 'ध्यान' है। बुद्धि के प्रवाहरूप ध्यान का जो आलम्बन या आश्रय है, उसी को साधु पुरुष 'ध्येय' कहते हैं। स्वयं साम्ब सदाशिव ही वह ध्येय हैं। मोक्ष–सुख का पूर्ण अनुभव और अणिमा आदि ऐश्वर्य–उपलब्धि—ये पूर्ण शिव ध्यान के साक्षात् प्रयोजन कहे गये हैं। ध्यान से सौख्य और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है, इसलिए मनुष्य को सब कुछ छोड़कर ध्यान में लग जाना चाहिए। बिना ध्यान के ज्ञान नहीं होता और जिसने योग का साधन नहीं किया है, उसका ध्यान सिद्ध नहीं होता। जिसे ध्यान और ज्ञान दोनों प्राप्त हैं, उसने भवसागर को पार कर लिया। समस्त उपाधियों से रहित, निर्मल ज्ञान और एकाग्रता पूर्ण ध्यान—ये योगाभ्यास से युक्त योगी को ही सिद्ध होते हैं। जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हैं, उन्हीं की बुद्धि ज्ञान और ध्यान में लगती है। जिनकी बुद्धि पाप से दूषित है, उनके लिए ज्ञान और ध्यान की बात भी अत्यन्त दुर्लभ है। जैसे प्रज्वलित हुई आग सूखी और गीली लकड़ी को भी जला देती है, उसी प्रकार ध्यानाग्नि शुभ और अशुभ कर्म को भी क्षणभर में दग्ध कर देती है। जैसे बहुत छोटा दीपक भी महान् अन्धकार का नाश कर देता है, इसी तरह थोड़ा–सा योगाभ्यास भी महान् पाप का विनाश कर डालता है। श्रद्धापूर्वक क्षणभर भी परमेश्वर का ध्यान करने वाले पुरुष को वह महान श्रेय प्राप्त होता है, जिसका कहीं अन्त नहीं है।

ध्यान के समान कोई तीर्थ नहीं है, ध्यान के समान कोई यज्ञ नहीं है, इसलिए ध्यान अवश्य करें। अपने आत्मा एवं परमात्मा का बोध प्राप्त करने के कारण योगीजन केवल जल से भरे हुए तीर्थों और पत्थर एवं मिट्टी की बनी हुई देवमूर्तियों का आश्रय नहीं लेते (वे आत्मतीर्थ में अवगाहन करते और आत्मदेव के ही भजन में लगे रहते हैं)। जैसे अयोगी पुरुषों को मिट्टी और काठ की बनी हुई स्थूल मूर्तियों का प्रत्यक्ष होता है, उसी तरह योगियों को ईश्वर के सूक्ष्म स्वरूप का प्रत्यक्ष होता है। जैसे राजा को अपने अन्तःपुर में विचरने वाले

स्वजन एवं परिजन प्रिय होते हैं बाहर के लोग उतने प्रिय नहीं होते, उसी प्रकार भगवान शंकर को अन्त:करण में ध्यान लगाने वाले भक्त ही अधिक प्रिय हैं, बाह्य उपचारों का आश्रय लेने वाले कर्मकाण्डी नहीं। जैसे लोक में यह देखा गया है कि बाहरी लोग राजा के भवन में राजकीय पुरुषोचित्त फल का उपभोग नहीं कर पाते, केवल अन्त:पुर के लोग ही उस फल के भागी होते हैं, उसी प्रकार यहाँ बाह्यकर्मी पुरुष उस फल को नहीं पाते, जो ध्यानयोगियों को सुलभ होता है।

ज्ञानयोग की साधना के लिए उद्यत हुआ पुरुष यदि बीच में ही मर जाए तो भी वह योग के लिए उद्योग करने मात्र से रुद्र लोक में जायेगा। वहाँ दिव्य सुख का उपभोग करके वह फिर योगियों के कुल में जन्म लेगा और पुनः ज्ञानयोग को पाकर संसार–सागर को लाँघ जायेगा। योग का जिज्ञासु पुरुष भी जिस गति को पाता है, उसे यज्ञकर्ता सम्पूर्ण महायज्ञों का अनुष्ठान करके भी नहीं पाता। करोड़ों वेदवेत्ता द्विजों की पूजा करने से जो फल मिलता है, वह एक शिवयोगी को भिक्षा देने मात्र से प्राप्त हो जाता है। यज्ञ, अग्निहोत्र, दान, तीर्थसेवन और होम– इन सभी पुण्यकर्मों के अनुष्ठान से जो फल मिलता है वह सारा फल शिवयोगियों को अन्न देने मात्र से प्राप्त हो जाता है। जो मूढ़ मानव शिवयोगियों की निन्दा करते हैं, वे श्रोताओं सहित नरक में पड़ते हैं और प्रलयकाल तक वहीं रहते हैं। श्रोता के होने पर ही कोई शिवयोगियों की निन्दा का वक्ता हो सकता है, इसलिए महापुरुषों के मत में उस निन्दा को सुनने वाला भी महान पापी और दण्डनीय है। जो लोग सदा भक्तिभाव से शिवयोगियों की सेवा करते हैं, वे महान् भोग पाते और अन्त में शिवयोग की भी उपलब्धि कर लेते हैं। इसलिए भोगार्थी मनुष्यों को चाहिए कि वे रहने को स्थान, खान–पान, शय्या तथा ओढ़ने–बिछाने की सामग्री आदि देकर सदा शिवयोगियों का सत्कार करें। योग धर्म संसार–अत्यन्त प्रबल है, अत: पाप रूपी मुद्गरों से उसका भेदन नहीं हो सकता। योगधर्म और पाप मुद्गर में उतना ही अन्तर समझना चाहिए, जितना वज्र और तन्दुल में, अत: योगीजन पापों और ताप–समूहों में उसी तरह लिप्त नहीं होते, जैसे कमल का पत्ता पानी में।

शिवयोग परायण मुनि जिस देश में नित्य निवास करता है, वह देश भी पवित्र हो जाता है। फिर उसकी पवित्रता के विषय में कहना ही क्या। अत: चतुर एवं विद्वान् पुरुष सब कृत्यों को छोड़कर सम्पूर्ण दु:खों से छुटकारा पाने के लिए शिवयोग का अभ्यास करे। जिसका योगफल सिद्ध हो गया है, वह योगी यथेष्ट भोगों को भोगकर समस्त लोकों की हित–कामना से संसार में विचरे अथवा अपने स्थान पर ही रहे या विषय सुख को अत्यन्त तुच्छ समझकर छोड़ दे। और वैराग्य–योग से स्वेच्छापूर्वक कर्मों का परित्याग कर दे।

जो मनुष्य बहुत से अनिष्ट देखकर अपनी मृत्यु को निकट जान ले, उसे योगानुष्ठान में संलग्न हो शिवक्षेत्र का आश्रय लेना चाहिए। वह मनुष्य यदि धीर चित्त होकर वहीं निवास करता रहे तो रोग आदि के बिना भी स्वयं प्राणों का परित्याग कर सकता है। अनशन करके, शिवाग्नि में शरीर की आहुति देकर अथवा शिवतीर्थों में अवगाहन करते हुए अपने शरीर को उन्हीं के जल में डालकर शिवशास्त्रोक्त विधि से जो अपने प्राणों का त्याग करता है, वह तत्काल मुक्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करने की आवश्यकता नहीं है। अथवा जो रोग आदि से विवश होकर शिवक्षेत्र की शरण लेता है, उसकी भी यदि वहाँ मृत्यु हो जाये तो वह इसी प्रकार मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। इसलिए लोग अनशन आदि से शिवक्षेत्र में श्रेष्ठ मरण की कामना करते हैं, क्योंकि शास्त्र पर विश्वास करके स्थिर हुए मन से उनके द्वारा इस तरह की मृत्यु स्वीकार की जाती है। जो शिव के लिए अथवा शिव भक्तों के लिए प्राण त्याग करता है, उसके समान दूसरा कोई मनुष्य मुक्ति मार्ग पर स्थित नहीं है। इस कारण संसार मण्डल से उसकी शीघ्र मुक्ति हो जाती है। इनमें से किसी एक उपाय का किसी तरह भी अवलम्बन करके अथवा विधिवत् षडध्वशुद्धि को प्राप्त होकर यदि कोई मनुष्य मरता है तो उसका अन्य पशुओं—प्राणियों के समान यहाँ और्ध्वदैहिक संस्कार नहीं करना चाहिए। विशेषतः उसके पुत्र आदि को उसके मरने से अशौच की प्राप्ति नहीं होती। ऐसे पुरुषों के मृत शरीर को धरती में गाड़ दे या पवित्र अग्नि से जला दे या शिवस्वरूप जल में डाल दे अथवा काठ या मिट्टी के ढेले की भाँति कहीं भी फेंक दे, सब उसके लिए बराबर है।

यदि ऐसे पुरुष के उद्देश्य से भी कोई कर्म करने की इच्छा हो तो दूसरों का कल्याण ही करे और अपनी शक्ति के अनुसार शिव भक्तों को तृप्त करें। उसके धन को शिव—भक्त ही ग्रहण करे। यदि उसकी संतति शिवभक्त हो तो वह भी ग्रहण कर सकती है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसका धन भगवान शिव को समर्पित कर दे। परन्तु उसकी पशु—सन्तति (शिव—भक्तिहीन सन्तान) उस धन को ग्रहण न करे।

(शिवपुराण से)

राष्ट्रदेवता की आराधना

ब्रह्मलीन स्वामी श्री अखण्डानन्दजी सरस्वती

हिन्दू–धर्म में राष्ट्र की आराधना का सर्वोपरि स्थान है। व्यक्ति और समाज अपने को राष्ट्रीय ही नहीं मानता, बल्कि स्वयं को राष्ट्र समझकर बहुमुखी अभ्युदय और विकास की चेष्टा करता है। अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए जागृत रहता है। वेदों में इसके अनेक उदाहरण हैं–

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रेराजन्यः शूर इषव्योऽतिव्यापि महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धीर्योषा जिष्णूरथेष्ठाः सभेयोयु वास्य यजमानस्य वीरो जायतम्। निकामेनिका मे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योग क्षेमो न कल्पताम्। *(यजुर्वेद, 2/23)*

'ब्रह्मन्! यज्ञादि उत्तम कर्मशील हमारे इस राष्ट्र (भारत) में ब्रह्मवर्चस्वी–तेजस्वी ब्राह्मण, लक्ष्यवेधक और महारथी तथा अस्त्र–शस्त्र में निपुण क्षत्रिय उत्पन्न हो। गायें प्रभूत दूध देने वाली और बैल बलवान् (बोझा ढोने आदि में क्षम) हृष्ट–पुष्ट तथा अश्व वेगवान् हो। सुन्दरी स्त्रियाँ नागरी (संस्कार–सदाचार–सम्पन्न बुद्धिमती) हो और युवक वीर, जयी, रथी तथा सभा के लिए उपयुक्त सभासद सिद्ध हो। हमारे राष्ट्र में पर्जन्य (मेघ) प्रकाम वर्षा बरसायें और ओषधियाँ (औषधियाँ और फसलें) फलवती होकर पकें–अन्न और फल पर्याप्त सुलभ हो। हमारे योग–क्षेम चलते रहें–अप्राप्त की उपलब्धि और उपलब्ध की रक्षा होती रहे।

विश्व से तादात्म्यापन्न होकर सेवा की प्रधानता, तैजस से तादात्म्यापन्न होकर वैश्वधर्म की प्रधानता और तुरीय से तादात्म्या होकर ब्राह्मण–धर्म की प्रधानता, तेजस से तादात्म्यापन्न होकर गृहस्थ की प्रधानता, प्रज्ञा से तादात्म्यापन्न होकर वानप्रस्थ की प्रधानता और तुरीय से तादात्म्यापन्न होकर संन्यासी की प्रधानता, इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकोण से हमारा चातुर्वर्ण्य और चातुराश्रम्य प्रतिष्ठित है, तो ऐसी स्थिति में हमारा राष्ट्र क्या है? हमारी शक्ति। देवी भगवती स्वयं बोलती है–

'अहं राष्ट्री, संगमनी वसूनाम्।'

'मैं राष्ट्रीय हूँ, मैं स्वयं राष्ट्र हूँ।'

यदि आपने भारतवर्ष की यात्रा की हो तो उसके दक्षिणी सिरे पर कुमारी अन्तरीप, जिसे कन्याकुमारी कहते हैं, वहाँ कुमारीदेवी की मूर्ति देखी होगी। आपको मालूम है वे वहाँ क्यों हैं? वे वहाँ

इसलिए हैं कि कैलाशपति भगवान् शंकर से उनका विवाह होगा, इसके लिए भारतवर्ष के दक्षिणी सिरे पर रहकर तपस्या कर रही हैं। वे तप–शक्ति, भारतवर्ष के दक्षिण में रहकर उत्तर के कैलाशपति भगवान् शंकर से विवाह करती हैं। जिसने कन्याकुमारी से लेकर कैलाश शिखर तक को एक कर दिया, इसका नाम है राष्ट्रशक्ति। भगवान् श्री रामचन्द्र ने अवध से उठकर लंका तक एक कर दिया–उत्तर से दक्षिण, दक्षिण से उत्तर।

आपको यह मालूम है कि रामेश्वर में गंगोत्री के जल के सिवा दूसरा जल शिव मूर्ति पर नहीं चढ़ता। यह भी आपको मालूम है कि गंगाजी हिमालय से निकलती हैं। किसलिए निकलती हैं? भगवान शंकर के सिर पर चढ़ने के लिए। लेकिन रामेश्वरम् के सिर पर कौन चढ़ेगा? गंगोत्री के ऊपर, गौरीकुण्ड के ऊपर का जल रामेश्वरम् पर चढ़ता है।

क्या आपको मालूम है यह धर्म, यह नियम किसने बनाया? आप कभी बदरीनाथ, केदारनाथ गये हैं? कभी पशुपतिनाथ गये हैं? कभी अमरनाथ गये हैं? वहाँ जो भगवान् को सुपारी, नारियल और इलायची चढ़ती है ये कहाँ से जाती हैं? आपको मालूम है, यह नियम किसने बनाया? कन्याकुमारी में केसर से देवी का शरीर रंग दिया जाता है। कश्मीर की केसर कन्याकुमारी पर नित्य चढ़ती है और कन्याकुमारी की सुपारी बदरीनाथ, अमरनाथ, पशुपतिनाथ, केदारनाथ इनको प्रतिदिन चढ़ती हैं। इसी प्रकार जगन्नाथपुरी से बेंत लेकर लोग बदरीनाथ जाते हैं और वहाँ पूजन करते हैं।

भगवान् श्रीराम के बारे में आपको मालूम है कि वे अवध से चले और पहुँचे रामेश्वरम् और लंका। और श्रीकृष्ण द्वारका से निकले तो कहाँ पहुँचे? भौमापुर की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर, जहाँ पूर्व दिशा में सूर्योदय होता है। और जहाँ पश्चिम दिशा में सूर्यास्त होता है; वहाँ द्वारका में राजध ानी कृष्ण की और विवाह किया जाकर प्राग्ज्योतिषपुर में। भौमासुर को मारा और उसकी कैद से सोलह हजार कन्याओं को छुड़ाकर, अपनाकर उन्हें समाज में ऊँचा स्थान दिया प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक हमारे श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण ने राष्ट्र की अखण्डता स्थापित की। आपको मालूम है श्रीमद्भगवत की रचना व्यासजी ने कहाँ की? बदरीनाथ से दो मील आगे माना दर्रा, जहाँ सरस्वती नदी बहती है। सरस्वती नदी के पश्चिम–तट पर माना–ग्राम, जो तिब्बत–भारत की सीमा पर माना जाता है, वहाँ व्यास भगवान् का शम्यापास नामक आश्रम है। अब भी लोग वहाँ जाते हैं और गुफा का दर्शन करते हैं। जहाँ पाण्डवों ने हिमालय में अपना शरीर गलाया था, उसी को वसुधारी कहते हैं। यह स्थान माना से दस–बारह मील आगे जाकर तिब्बत की सीमा में है, जहाँ वसुधारा गिरती है और फुहियाँ उड़ती हैं, वहां बड़े दिव्य दृश्य देखने को मिलते हैं एवं हमारे महात्मा लोग अवधूत होकर तपस्या करते हैं। आपने सुना होगा, भगवान् श्री शंकराचार्य ने नेति दर्रा के पास जोशी मठ में एक गुफा में बैठकर ब्रह्मसूत्र पर शारीरिक भाष्य लिखा था।

यह सुपारी, नारियल, केसर, रामेश्वर, गंगोत्री, कन्याकुमारी और कैलासाधीश्वर भगवान शिव—इन सबके सम्बन्ध को लेकर विचार करो, हमारे राष्ट्र का सांस्कृतिक रूप, धार्मिक रूप क्या है? आप जानते हैं कि यदि आज सरकार यह चाहे कि एक करोड़ रुपये प्रति वर्ष पहाड़ी लोगों के लिए भेज दिया जाए, इसके लिए हम पर टैक्स लगाया जाये तो आपको बहुत अखरेगा। आप कहेंगे, हम रहते हैं मैदान में, पहाड़ी लोगों को रुपये क्यों दें? लेकिन आप जानते हैं, व्यास भगवान ने कहा—'बदरीनाथ आने से पुण्य होता है। ब्रह्मकपाली में पिण्डदान करने से पितरों का कल्याण हो जाता है।' और आज पचास लाख से अधिक सालाना बदरीनाथ, पचास लाख से अधिक केदारनाथ, पचास लाख से अधिक सालाना अमरनाथ और पचास लाख से अधिक पशुपतिनाथ में, इस प्रकार हर साल मैदान का रुपया धर्म के नाम पर बिना टैक्स लगाये हमारे महापुरुषों ने पहुँचा दिया। हमारे जो लोग वहाँ रहते हैं, जो हिमालय की रक्षा करते हैं, वहाँ का व्यापारी, कुली, ब्राह्मण, वहाँ का चातुर्वर्ण्य, वहाँ का सिपाही बिना किसी परिश्रम के, बिना किसी टैक्स के वहाँ बैठे-बैठे अपनी जीविका प्राप्त कर ले, यह धर्म के आधार पर हमारे ऋषि-महर्षियों ने राष्ट्र-सेवा की व्यवस्था की थी। सारा काम कानून से नहीं चलता, इसके लिए कुछ सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक मर्यादाएँ भी बाँधनी होती हैं।

एक महात्मा ने तो कहा है जिस कानून के पालन के लिए पुलिस का प्रयोग करना पड़े वह कानून ही गलत है, क्योंकि मनुष्य अपने हृदय से उसे स्वीकार नहीं कर रहा है। उसके ऊपर जबरदस्ती वह लादा जा रहा है। यह धर्म का कानून है, यह संस्कृति का कानून है, यह हमारे महात्माओं की देन है।

देवी भगवती कहती हैं—'अहं राष्ट्री, संगमनी वसूनाम्'—मैं स्वयं राष्ट्र हूँ, राष्ट्रीय शक्ति हूँ। स्वामी रामतीर्थ ने कहा—'मैं भारतवर्ष हूँ। कन्याकुमारी मेरा पाँव है। हिमालय मेरा सिर है, सिन्धु की ओर मेरा दाहिना और ब्रह्मपुत्र की ओर मेरा बाँया हाथ है। जब मैं बोलता हूँ, तब भारतवर्ष बोलता है। जब मैं चलता हूँ तब भारतवर्ष चलता है। मेरी आवाज भारतवर्ष की आवाज है।'

स्वामी रामतीर्थ ने भारतवर्ष से एकात्म्य प्राप्त कर तादात्म्य प्राप्त करके, भारत की आत्मा, भारत की वाणी को सम्पूर्ण विश्व में मुखरित किया था। इसका अभिप्राय यह है कि हमारा राष्ट्र 'हि' से लेकर 'इन्दु' पर्वत तक है। 'हि' अर्थात् हिमालय और दक्षिण में जो समुद्र है, चन्द्रमा को देखकर उछलने वाला, वह इन्दु का प्रेमी इन्दुर अर्थात् पर्वताकार समुद्र ही इन्दु पर्वत है। 'हि' से लेकर इन्दु पर्यन्त इस देश की सीमा होने के कारण, इसे हिन्दु बोलते हैं। देवी पुराण, कालिका पुराण और मेरुतन्त्र में 'हिन्दु' शब्द की व्यवस्था की गयी है। हिन्दू शब्द को लेकर सिन्धु शब्द की एक दूसरी व्यवस्था है—'हिनस्ति दुष्टान् इति हिन्दुः।' जो दुष्टों की हत्या करे, उसका नाम हिन्दू। जो हीन को

दूषित करे, उसका नाम हिन्दू है। यह हिन्दू शब्द विदेशियों का दिया हुआ नहीं है। यह पूर्णतया वैदिक और भारतीय आचार्यों द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय–विशेष का द्योतक है। हिन्दू शब्द का अर्थ है–जो पूर्व परम्परा से भारतीय हो और भारतीय आचार्य द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय का अनुयायी हो। जिसका आचार्य विदेशी हो, वह हिन्दू नहीं। जो हिन्द देश में पैदा हुआ हो और हिन्द देश में पैदा हुए आचार्य के सम्प्रदाय में दीक्षित हुआ हो, वह हिन्दू। यह हिन्दू शब्द भी 'प्राचीन है। पौराणिक, तान्त्रिक और भावपूर्ण अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है। इस तरह हिन्दू बहुल देश होने के कारण यह हिन्दुस्थान कहलाता है। इस हिन्दुस्थान के उस पार फारमोसा है। उच्चारण भेद से स्थान को स्तान कहने लगे। पारसनाथ जिसे परसिया, फारस–पारस कहते हैं, सिन्धु के उस पार है। इस प्रकार फारमोसा तक पूर्वी सीमा और पारसथान तक पश्चिमी सीमा। इसके बीच में यह हमारा भारत राष्ट्र भारतवंशियों के द्वारा सेवित राष्ट्र, इसे जो अपना राष्ट्र मानकर अपने व्यक्तिगत सुख–स्वार्थ को छोड़कर इसकी सेवा करता है, वह अपने कर्त्तव्य का धर्म का पालन करता है और कर्त्तव्य एवं धर्म का पालन हमेशा अन्तःकरण को शुद्ध करने वाला होता है। श्रम उसे कहते हैं, जो लोहे को साफ कर दे।

जिस कर्म से हृदय की शुद्धि हो, उसका नाम धर्म और जिस कर्म से लोहे की, मिट्टी की, बाहरी पदार्थों की शुद्धि हो, उसका नाम श्रम। तो जो भी कर्त्तव्य अथवा धर्म का पालन किया जाता है, वह हृदय को शुद्ध करने के लिए और जब हृदय साफ होता है, वासनाएँ निवृत्त होती हैं, कामनाएँ निवृत्त होती हैं, तब हम प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्म–तत्त्व के साक्षात्कार के योग्य, भगवान् के दर्शन के योग्य, भगवान् की सेवा के योग्य बनते हैं। तभी योग्य बनते हैं जब धर्मानुष्ठान के द्वारा, कर्त्तव्यपालन के द्वारा हमारा हृदय शुद्ध होता है : इसलिए राष्ट्रसेवा असली सेवा है। यह नहीं समझना चाहिए कि यदि हम राष्ट्र–सेवा करने लगेंगे तो हमें भगवान् नहीं मिलेंगे। यह नहीं सोचना चाहिए कि यदि हम राष्ट्र–सेवा करने लगेंगे तो हमें ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान नहीं होगा।

यह तो इसके रास्ते में एक मंजिल है। इसलिए राष्ट्रीयता को स्वीकार करके, राष्ट्र की भलाई की दृष्टि से, आप अपने कर्त्तव्य का, धर्म का पालन करें। इसी के द्वारा आपका शरीर भी ठीक–ठिकाने रहेगा, भौतिक उन्नति भी होगी और आत्मसेवा भी। उस उन्नति के साथ–साथ अन्तःकरण शुद्ध होगा। आत्मसेवा मायने मन और बुद्धि की सेवा। सूक्ष्म शरीर की भी सेवा होगी और इसी के द्वारा आपको योग की योग्यता, समाधि की योग्यता भी प्राप्त होगी और इसी के द्वारा ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान भी होगा।

आवश्यक सूचना

सभी भाई–बहिनों को सूचित करते हुये अपार हर्ष हो रहा है कि हमारे श्री गुरुदेव भगवान् का 108 वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्ध गुफा संवाई आश्रम में बड़ी धूम–धाम से मनाया जा रहा है।

गुरुदेव भगवान् के जन्मोत्सव पर सभी गुरु भाई–बहिन आमंत्रित हैं।

आचार्य डा. दासलालजी महाराज
सिद्ध गुफा संवाई आश्रम
एत्मादपुर, आगरा

श्री रामलाल प्रभवे नमः

सभी गुरुभाई बहिनों को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज योगाश्रम टोड़रपुर (वाराणसी) का पञ्चम् वार्षिक योग शिविर सवाई धाम के आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज की अध्यक्षता में 11 अक्टूबर से 15 अक्टूबर 2017 तक मनाया जा रहा है। 15 अक्टूबर को भंडारे का आयोजन रहेगा। सभी गुरुभाई बहिनों से निवेदन है कि पूर्व की भाँति उत्सव/शिविर में भाग लेकर पुण्य के भागी बनें। आध्यात्म लाभ लें।

जय गुरुदेव की !

निवेदक प्रबन्ध समिति
योगेश्वर चन्द्रमोहन जी महाराज योगाश्रम
टोड़रपुर (मोहन सराये), वाराणसी

सम्पर्क सूत्र – 09453357801, 09450708838, 08574406843

अन्त मति सो गति

सूरज शर्मा, रोहतक (हरि.)

गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज के प्रवचन का (उपदेश का) व्याख्यान ''अन्तमति सो गति'' ही याद है। गुरु महाराज वर्ष 1989 में गोहाना में योग प्रचार शिविर में प्रवचन कर रहे थे, उस प्रवचन का विषय मुझे कोई याद नहीं है लेकिन मुझे ''अन्तमति सो गति'' आज भी याद है, उसी वर्ष हम ऋषिकेश में गंगा दशहरा के अवसर पर आश्रम में गये थे, ऋषिकेश में मन्दिरों के दर्शनार्थ गंगा मैया पार भी मन्दिर के बाहर भी मैंने लिखा देखा जिससे मुझे दिल में विश्वास हो गया कि ''अन्त मति सो गति''।

प्रत्येक मनुष्य के देहान्त के (अन्त में) समय मस्तिष्क के भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं या जीवन में घटनायें घटी हुई सामने आती रहती हैं, इसकी पुष्टि गुरु महाराज ने अपने योग सिद्धान्त प्रथम खण्ड में प्रथम भाग परिच्छेद प्रथम में की है।

इस सिद्धान्त के अनुसार अन्तिम क्षणों में जिन–जिन भावों का स्मरण करता हुआ मनुष्य शरीर छोड़ता है वैसी गति को पा जाना उसके लिये अनिवार्य है। हमारे प्राचीन इतिहास में उदाहरण रूप से इस प्रकार की बहुत सी घटनायें मिलती हैं। श्रीमद्भागवत् पुराण में महामुनि जड़ भरत का उपाख्यान मिलता है। वे एक महान तपस्वी योग–ध्यान–परायण मुनि थे। उन्होंने आश्रम में एक मृग के बच्चे को पाल लिया, जिसका परिणाम यह निकला कि प्राण प्रयाण के अन्तिम क्षणों में भी उनको उस मृग के बच्चे की याद आती रही जिससे वे मृगी (हिरणी) के पेट में जा गिरे, जिसका उन्हें बड़ा भारी दुःख हुआ और उसका कारण अन्तिम समय में मृग बच्चे का चिन्तन ही समझा इसी दृढ़ धारणा को लेकर उन्होंने शुभ गति पाने के लिए अपने मृग शरीर का परित्याग कर दिया।

गुरु उपदेशानुसार–जब तक यह शरीर स्वस्थ है और बुढ़ापा दूर है, इन्द्रियों की शक्ति नष्ट नहीं हुई है तब तक अपने भले का प्रयत्न कर लेना चाहिए। अतः मनुष्य लोक में जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह मनुष्य जन्म की दुर्लभता को समझे और जो शुभ कार्य वह कर सकता है, करे, मनुष्य जन्म कर्म योनि है, इसमें कर्म किया जा सकता है। अन्य सब योनियाँ भोग योनी हैं। उनमें अपने भविष्य निर्माण के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। अतः मनुष्य–जन्म की दुर्लभता को समझकर अपने कल्याण के लिए प्रयत्न करते

रहना चाहिए। मनुष्य जीवन एक प्रकार की परीक्षा–भूमि है। परीक्षा पत्र अच्छे हो गये तो परिणाम शुभ निकलेगा। अतः मनुष्य जन्म की दुर्लभता–रूप चेतावनी को स्मरण रखना चाहिए। अर्थात् **अच्छी संगति, शुभ कर्म एवं शुभ विचारों से मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति की ओर कदम बढ़ा सकता है।** मनुष्य जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। अर्थात् अन्त मति शुद्ध होने पर ही अच्छी गति प्राप्त कर सकता है।

आरोग्य सम्बन्धी दोहे

शीतल जल में डालकर सौंफ गलाओ आप।
मिश्री के संग पान कर मिटे दाह–संपात।।

फटे बिमाई या मुँह फटे, त्वचा खुरदुरी होय।
नीबू–मिश्रित आँवला सेवन से सुख होय।।

सौंफ इलायची गर्मी में, लौंग सर्दी में खाय।
त्रिफला सदाबहार है, रोग सदैव हर जाय।।

वात–पित्त जब–जब बढ़े, पहुँचावे अति कष्ट।
सौंठ, आँवला, दाख सँग खावे पीड़ा नष्ट।।

नींबू के छिलके सुखा, बना लीजिए राख।
मिटै वमन मधु संग ले, बढ़ै वैद्य की साख।।

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्री सेवतीलाल शर्मा (एडवोकेट)

योगियों का देश के इतिहास में एक उल्लेखनीय स्थान रहा है। देश की अनमोल विभूतियों के रूप में समय–समय पर चमत्कारिक करिश्मों से आज भी उनकी यादें जिन्दा हैं। भगवान् श्रीकृष्ण को पूर्णरूपेण योगिराज कहा गया है और आज इसी पदवी से विभूषित किया गया है महर्षि श्री अरविन्दजी को।

हमारे जिला आगरा में ही एत्मादपुर कस्बे से बरहन जाने वाले मार्ग पर सिद्ध गुफा के अधिष्ठाता श्री चन्द्रमोहन महाराज की ख्याति देश–विदेश में सिद्धयोगी के रूप में फैली हुई थी। और उस ख्याति में समाजवादी नेता राजनारायणजी ने अनेकों बार सिद्धगुफा आकर महाराज जी के दर्शन कर वहाँ का प्रसाद तत्कालीन राष्ट्रपति श्री नीलम संजीव रेड्डी व संसदीय सदस्यों को देकर राष्ट्रीय मान्यता प्रदान करने में अनूठा योगदान दिया था। मेरे मन में कई बार उत्कंठा जागी कि योगिराज जी के दर्शन कर उस पवित्र आश्रम की मिट्टी को अपने मस्तक पर लगाने का सौभाग्य प्राप्त करूँ। मैंने अपने स्व. मित्र पं. बेनीराम शर्मा से सलाह ली तो उन्होंने बड़ी उत्सुकता से इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया।

फिर क्या था, हम दोनों मोटर साइकिल पर सवार होकर प्रसाद के लिए एक दर्जन केले लेकर आश्रम पहुँच गये। ग्रामीण आँचल में खेतों से लगा आश्रम वृक्षों की छाया में शान्ति स्थल प्रतीत हुआ। क्योंकि साधु–सन्त अपने व्यक्तित्व से स्थानों को अनुपम सुन्दर व सुगन्धित कर देते हैं। कूये का निर्मल जल पीकर शीतलता का अनुभव किया।

चूँकि वार्षिक भंडारा एक दिन पहले ही समाप्त हो चुका था परन्तु फिर भी विभिन्न प्रदेशों के शिष्य व शिष्याओं की चहल–पहल आश्रम में देखने को मिली। एक ओर विशेष भीड़ थी अतः उत्सुकतावश हम भी वहाँ पहुँचे तो देखा कि कई एक शिष्याएँ चार–चार लड्डुओं की पार्सल बनाकर गुरुजी की आज्ञानुसार उन शिष्यों को भेज रही हैं जो स्वयं उपस्थित न होने के कारण प्रसाद से वंचित रहे। यह सुनकर मुझे लगा कि स्वामी जी कितने सहिष्णु और संवेदनशील होंगे।

इतने में क्या देखता हूँ कि एक सज्जन अपने साथ एक संन्यासी को लेकर अमुक–अमुक सज्जनों के नाम बता रहे हैं। इतने में सामने देखा कि चेहरे पर एक विशेष तेज चौड़े ललाट

वाले योगिराज जी सामने ही थे। बरबस नमस्कार के लिए हाथ उठ गये। स्वामी जी ने अपरिचितों को बड़े स्नेह से उत्तर दिया। हमसे जब पूछा तो हमने अपना मन्तव्य भी बताया। तुरन्त कहा पहले प्रसाद ग्रहण करो फिर वार्तालाप करेंगे।

हमने प्रसाद लिया और सोचने लगे कि स्वामी जी अतिव्यस्त हैं और हम चाहते हैं कि आध्यात्मिक चर्चा हो। तभी स्वामी जी ने हमें सम्बोधित करके कहा, ''बन्धुओं! आओ सिद्ध गुफा के दर्शन कर लें'' हम तुरन्त स्वामी जी के पीछे चल पड़े। कुछ सीढ़ियों नीचे की ओर जाकर हमने एक रमणीक स्थान सुनसान शान्तिमय देखा वहाँ एक उच्च स्थान में आसन लगा था। यही पवित्र स्थान गुरु महाराज का था। जहाँ गुरु श्री रामलाल जी योग साधना करते थे। गुरुजी सिद्ध पुरुष थे। लोगों का कहना था कि उन्होंने स्वयं आँखों से गुरुजी को आकाश में उड़ते देखा। कुछ ने गुरुजी को एक समय में कई स्थानों पर देखा। हमें भौचक्का सा देखकर स्वामी जी ने कहा ''योग द्वारा सब कुछ सम्भव है। उन्होंने योग को बड़े सरल भाव से बताया कि इसका अर्थ है ''जोड़ना'' और आगे चलकर मानव जीवन में सारी युक्तियाँ मानस की जोड़ने की ऋचा हैं। विद्या अध्ययन से विश्व के अनेक आविष्कारों की जानकारी प्राप्त होती है। गुणवान व्यक्ति इनको संजोता है। तथा जनहित और कल्याण कार्यों में प्रयोग करता है। यह भी योग का ही एक रूप है। दूसरा भारतीय दृष्टिकोण संसार के समस्त बन्धनों से हटकर प्रभु के चरणों में ध्यान लगाकर, संसार में सुख व शान्ति तथा सम्पन्नता की वृष्टि हो ऐसा प्रयास योगी लोग करते हैं। कठिन साधना निरन्तर त्याग और संयम की परीक्षा में कुछ ही लोग उत्तीर्ण होकर यशस्वी बन पाते हैं। कभी शान्ति से आइये खुलकर चर्चा होगी। इतने में कुछ शिष्यगण प्रस्थान करने के पहले योगिराज जी के चरण-स्पर्श व आशीर्वाद लेने आ पहुँचे। बातों का सिलसिला टूट गया और हम भी आज्ञा लेकर घर लौट आये। सकारात्मक विचारों की पोटली लेकर गन्तव्य पहुँच गये।

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

अर्थात्— पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से रोग होता है, पाप से बुढ़ापा आता है और पाप से ही दैन्य, दुःख एवं भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

गुरु चरणों में लग जाये मन

विजय शर्मा, सहारनपुर

तर्ज–जिन्दगी की ना टूटे लड़ी

गुरु चरणों में लग जाये मन
प्रभु कृपा से मिला नर तन
जीवन ज्योति तेरी बुझ रही
पूंजी सतकर्म की कुछ नहीं
कैसे आये शरण प्रभु जी तेरी
पास मेरे नहीं नाम धन..... प्रभु कृपा ....

जग की माया ने डाला है घेरा
साथी जग में नहीं कोई तेरा
कर्म बन्धन में जकड़ा गया
जाल तूने बुना निशदिन....प्रभु कृपा....

झूठी सारी ये जग की माया
सदगुरु देव ने यही समझाया
कट जायेंगे सारे बन्धन
जिस पल आये प्रभु की शरण.....प्रभु कृपा....

दर पे प्रभुजी के हम आ गये
बिन मांगे ही सब पा गये
पूरी होवें मुरादें सभी की
गुरुचरणों में लगा रहे मन.... प्रभु कृपा....

बीता हुआ क्षण फिर हाथ नहीं आता। यदि तुम मानव–जीवन की अमूल्यता को भूलकर इसे व्यर्थ और अनर्थ के कार्यों में लगाया रखोगे तो तुम्हारे समान मूर्ख और कोई नहीं होगा; क्योंकि तुम मिले हुए अपने परम लाभ के समय को व्यर्थ खो रहे हो और ऐसे कर्म कर रहे हो, जिनका परिणाम इस बहुमूल्य समय का नष्ट हो जाना–इस सुअवसर का छिन जाना ही नहीं होगा, वरन् जन्म–जन्म तक आसुरी योनि और भीषण नरकयन्त्रण की प्राप्ति होगी। फिर रोने–धोने से कुछ भी नहीं होगा। अतएव अभी से चेत जाओ और अपने जीवन का प्रत्येक क्षण भगवत्प्राप्ति के साधन में लगाकर जीवन को सफल करो।

कुराने में प्रथम योग-प्रचार कार्यक्रम

अशोक शर्मा, दिल्ली

यह घटना पं. हरप्रसाद शर्मा जी (मास्टर जी) और उनके परिवार से सम्बन्धित है। जिन्हें गुरुदेव भगवान् ''भैया'' और कभी-कभी ''मास्टर जी'' कहकर बुलाते थे। गुरुदेव भगवान का प्रथम योग-प्रचार कार्यक्रम कुराना (अहर-कुराना) से प्रारम्भ हुआ जहाँ मास्टर जी सरकारी मिडिल स्कूल के हैडमास्टर थे। उस समय इस परिवार में मास्टर जी के चार सुपुत्र 'पं. रामेश्वर दत्त', 'पं. नारायन दत्त', 'पं. कृष्ण दत्त', 'पं. विष्णु दत्त' और एक पुत्री 'श्रीमती प्रेमलता' थीं।

मास्टर जी सद्गुरुदेव भगवान आनन्दकंद योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पूज्य पिता सुनामधन्य पं. देवीराम जी के समय में अलूपुर आया जाया करते थे। उस समय (महाप्रभुजी श्री रामलाल जी महाराज के इह लोक-लीला संवरण सन् 1938 के पूर्व) अँग्रेजों के समय में डाक का प्रभार भी स्कूल के हैडमास्टर के पास रहता था। अतः जब भी मास्टर जी का चक्कर गुरुदेव की जन्म भूमि अलूपुर जिला करनाल (अब जिला पानीपत) हरियाणा (तब पंजाब प्रान्त के अन्तर्गत आता था) गुरुदेव भगवान जी के पिता जी इनसे पोस्टकार्ड व अन्तर्देशीय तथा लिफाफे लिया करते थे। और लिखे हुए पत्र आदि मास्टर जी को डाक द्वारा पोस्ट से प्रेषित करने के लिए दिया करते थे। पं. देवीराम जी उत्तर भारत के आर्य-समाज के गणमान्य प्रचारक थे। अतः डाक से अपने कार्यक्रम की सूचना दिया करते थे।

कई बार मास्टर जी के आने पर पं. जी उन्हें भोजन कराया करते थे। गुरुदेव भगवान के उपस्थित होने पर उन्हें कहते 'अरे ब्रह्मचारी! मास्टर जी को भोजन कराना है। उन्हें गुरुदेव ने उड़द-चने की मिली-जुली दाल और चूल्हे पर मिस्सी रोटी बनाकर भोजन कराया। गाँव के बाहर के मकान में तब जामुन का एक वृक्ष था। जामुन की ऋतु के समय गुरुदेव भगवान के पिताजी के कहने पर स्वयं गुरुदेव भगवान ने पेड़ पर चढ़कर जामुन तोड़कर खिलाई। अस्तु! मास्टर जी का गुरुदेव भगवान के परिवार के साथ बड़ा ही पुराना रिश्ता था। गुरुजी उस समय ब्रह्मचारी वेष में टाट पहनकर रहते थे। थोड़ी-थोड़ी दाढ़ी व मूँछें थीं। वह स्वयं भी श्री महाप्रभु जी को पत्र लिखकर डाक से भेजने के लिए मास्टर जी को दिया करते थे। कि मेरी भी ये चिट्ठियाँ डाक से भेज देना। गुरुदेव भगवान के पिताजी के देहावसान और

महाप्रभुजी के इहलीला संवरण (सन् 1938) के साथ आना–जाना समाप्त हो गया। क्योंकि तब गुरुदेव कभी–कभार अलूपुर आते थे। अन्यथा ऋषिकेश, वृन्दावन और सँवाई अधिक निवास किया करते थे।

सन् 1952 में मास्टर जी के एक शिष्य पं. हरीराम ''गन्नौर निवासी'' ने जो कि अपने को इनका पुत्र समान ही मानता था, ने आग्रह किया कि पिताजी अब की बार आप अलूपुर में एक योगिराज जी हैं उनका योग–प्रचार कार्यक्रम कराओ। क्योंकि क्वार के महीने में यह परिवार कुराने में रामलीला खेला करते थे। अस्तु गर्मी के दिन थे। स्कूल की छुट्टियाँ थीं। पं. हरीराम के कहने पर अपने ज्येष्ठ पुत्र पं. रामेश्वर दत्त जी (जिन्हें प्यार से सब रमेश कहते थे) से पत्र लिखकर निवेदन किया कि हमारे यहाँ योगिराज जी सुविधानुसार योग–प्रचार कार्यक्रम की तारीख निश्चित करने की कृपा करें। पत्र दस्ती हरिराम के हाथ पूज्य गुरुदेव भगवान के पास भेजा गया।

पत्र को पढ़कर गुरुदेव भगवान् ने उत्तर में दस्ती पत्र लिख भेजा कि चिरंजीव तुम्हारी जाति क्या है? गोत्र क्या है? आदि–आदि। पत्र का उत्तर तत्काल मास्टर जी ने सारा विवरण पं. रमेश जी के हाथ लिखवाकर दस्ती गुरुदेव भगवान् के पास भेज दिया। और कृपानिधान ने तत्काल ज्येष्ठ माह में ही अपने आने और योग–प्रचार कार्यक्रम निर्धारित तिथि से कुराने में करने का निश्चिय लिखवाकर हरीराम के हाथ दस्ती–पत्र कुराना भेज दिया गया।

ज्येष्ठ माह सन् 1952 में पं. रमेश जी को घोड़ी लेकर योगिराज जी को लेने के लिए कुराने से अलूपुर भेजा गया। वह घुड़सवारी जानते थे। गुरुजी दोपहर का भोजन कर अपने वस्त्रादि एक बिस्तर में टाट में लपेटकर घोड़ी पर बैठकर चल दिये। गुरुजी घोड़ी पर आगे बैठ गये और उनका बिस्तर पीछे रखा गया। बेटा रमेश घोड़ी की रास को थामकर खेत की मेंढ़ों पर चलकर कुराने को प्रस्थान कर गये।

कुराने पहुँचकर ज्यों ही मास्टर जी ने अपने पूर्व परिचित ब्रह्मचारी जी को योगिराज के रूप में देखा तो प्रसन्नता से उछल पड़े और खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वह तो सोचते थे कि योग–प्रचार के लिए कोई संन्यासी महात्मा दाढ़ी–जटाओं वाले गेरुआ वस्त्र धारी होंगे। परन्तु यह तो पं. देवीराम जी के ही सुपुत्र ब्रह्मचारी ही योगिराज श्रीचन्द्रमोहन जी महाराज हैं। जो कि अपने सद्गुरुदेव परात्पर ब्रह्म अनन्त श्री महाप्रभु पं. रामलाल जी द्वारा उद्घाटित योग की धारा के प्रवाह को आगे बहाने का संकल्प लेकर योग की पताका लिये योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज निकले। जिन्हें स्वयं अपने गुरुदेव से योग–प्रचार की आज्ञा विधिवत् मिली थी।

यह योग–प्रचार का पहला कार्यक्रम कुराने में एक माह तक चला। प्रातः श्री प्रभुजी की आरती और गीता–पाठ के पश्चात् गुरुदेव स्वयं झण्डू के बाग में सभी को ध्यान में बिठा दिया करते थे। गुरुजी एक वृक्ष के नीचे खाट बिछाकर विश्राम में बैठ जाते थे। प्रत्येक साधक पुष्प प्रसाद गुरुजी से लेकर अलग–अलग पेड़ों के नीचे ध्यान में बैठते थे। एक घण्टे ध्यान में बैठकर अभ्यास के बाद सभी अपने–अपने अनुभव जो ध्यान में अनुभूति होती थीं, उन्हें सुनाया करते थे। पं. रमेश जी की धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवी शर्मा गुरुजी का भोजन बनाया करती थीं। वह गुरुजी को रसोई में बोरी के आसन पर बिठलाकर एक–एक फुल्का चूल्हे पर सेक कर प्रेमपूर्वक भोजन बनाकर खिलाया करती थीं। गुरुदेव जी को सभी अपने परिवार के बड़े–बूढ़े की तरह आदर मान दिया करते थे। सद्गुरु सत्ता क्या होती? इसका इन्हें रंचमात्र भी ज्ञान न था। गुरुजी से सब खुलकर बात किया करते थे।

रात्रि को महाप्रभुजी की आरती होती थी और उसके पश्चात् गुरुदेव जी योग–सिद्धान्तों पर व्याख्यान दिया करते थे। यह क्रम प्रतिदिन चला करता था। प्रातः काल आरती–पूजा, गीता पाठ और ध्यानाभ्यास के बाद नेति–जीवन तत्व आदि क्रियायें और शीतली–नमोमुद्रा प्राणायाम और अन्य योगासन भी सिखाये जाते थे। ये सभी क्रियायें व्यक्ति की योग्यता, क्षमता और अधिकारी के अनुसार सिखलाई जाती थीं। उस सयम योग का धुँआधार प्रचार चला। लोगों को बड़ी–बड़ी अनुभूतियाँ हुईं। ध्यान का विशेष प्रवाह चला और सभी भाग्यशाली जीवों ने भक्तों ने जो कुछ प्राप्त किया वह वर्णनातीत है। जिसे पहले वहाँ के समुदाय ने अनुभव तो दूर सुना भी न था। वह नहीं जानते थे सद्गुरु सत्ता क्या होती है? समाधि के कितने प्रकार होते हैं? उनके भेद क्या–क्या होते हैं? सबीज–निर्बीज, सविकल्प–निर्विकल्प–सविचार–निर्विचार, आदि से समाधि कितने प्रकार की होती है? सभी सरल–सीधे व सच्चे देहाती समुदाय के लोग गुरुदेव भगवान जी के द्वारा प्रवाहित योग–गंगा में डुबकी लगाकर अपने मानव–जीवन को सफल और धन्य बना रहे थे। उस समय के कुछ साधकों में प्रमुख थे–

,श्री बदलूराम, किशनलाल, ताराचन्द, धर्मचन्द, रामकिशन (बनिया), सूरजभान, सुमेरचन्द, जयनारायन, जयभगवान, रामकुमार आदि–आदि। इनमें से श्री बदलूराम, जयभगवान और रामकिशन रोहेला (दर्जी) ये अभी भी हैं। और परिवार में मेरे चचिया श्वसुर पं. विष्णु दत्त जी प्रमाण के रूप में जो प्रत्यक्षदर्शी हैं, अभी जीवित हैं।

गीता जी के विविध पालनीय बिन्दु

- जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा व्याधियों में दुःखरूप दोषों का बार-बार देखना।
- प्रकृति के गुणों द्वारा विचलित नहीं होना; क्योंकि गुण ही गुणों में बरत रहे हैं।
- ब्रह्मचर्य का पालन करना।
- देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुषों का यथायोग्य पूजन करना, पूज्य भाव रखना। जीवन्मुक्त महापुरुषों से सुनकर उपासना करना।
- मन को सदा प्रसन्न रखना। अनुकूलता में सम रहना तथा व्यथित न होना। कोई भी परिस्थिति आये, ऐसा समझें कि आने-जाने वाली और अनित्य है, इसलिए सहन करें तथा इस मंत्र का जप करें। 'आगमापायिनोऽनित्याः।'
- यथायोग्य नियत तिथि, वार आदि को अन्य देवताओं का निष्कामभावपूर्वक पूजन-अर्चन करना।

  सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणोंद्वारा किये जाते हैं। अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मान लेता है। अतः किसी भी कार्य में अपने का कारण नहीं मानें, केवल निमित्तमात्र मानें।
- शास्त्रविधि के अनुसार चलें। कल्याणकारी शास्त्रों को आदर्श मानें।
- सम्पूर्ण क्रियाएँ भगवान् को अर्पण करनी चाहिए। जो कुछ करें, जो कुछ खायें, जो कुछ हवन करें, जो कुछ दान दें, जो कुछ तप करें – सब कुछ प्रभु को अर्पण करें।
- ज्यादा नींद नहीं लें तथा आवश्यकता से कम नींद भी न लें। आवश्यकता से अधिक भोजन न करें तथा जानकर भूखे न रहें। पूर्णिमा, एकादशी आदि व्रत शास्त्रोक्त होने से करने चाहिए।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ________________

____

____

□□□□□□□

जितने मत उतने पथ। अनन्त मत हैं, और अनन्त पथ। एक को ब्लपूर्वक पकड़ना पड़ता है। छत पर जाने की चाह है, तो जीने से भी चढ़ सकते है ; बाँस की सीढ़ी लगाकर भी चढ़ सकते हो। परंतु एक पैर इसमें और दूसरा उसमें रखने से नहीं होता। एक को दृढ़ भाव से पकड़े रहना चाहिए। ईश्वर लाभ करने की इच्छा हो तो एक ही रास्ते पर चलना चाहिए और दूसरे मतों को भी एक–एक मार्ग समझना। यह भाव न हो कि मेरा ही मार्ग ठीक है, और सब झूठ है; द्वेष न हो। किसी की निन्दा न किया करो– एक कीड़े की भी नहीं।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा